केरल ज्योति

अक्तूबर 2025

ISSN 2320-9976
Reference Resource Journal

केरल हिंदी प्रचार सभा

ISO 9001: 2015

केरल हिन्दी प्रचार सभा के तत्वावधान में आयोजित राज्यस्तरीय पखवाडा समारोह का उद्‌घाटन श्री.वी.मुरलीधरन, पूर्व राज्यमंत्री भारत सरकार कर रहे हैं।

पुस्तक विमोचन के विविध दृश्य

मध्यप्रदेश राज्य सरकार के हिंदी सेवी सम्मान प्राप्त वरिष्ठ साहित्यकार डॉ.के.सी.अजयकुमार को केरल हिंदी प्रचार सभा का आदर करते हुए केरल सरकार के पूर्व मंत्री श्री बाबु दिवाकरन

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक

स्व. के वासुदेवन पिल्लै

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

डॉ. एम एस विनयचंद्रन

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 62 दल : 7 अंक: **अक्तूबर 2025**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

केरल हिंदी प्रचार सभा की वर्चस्व परंपरा के आचार्य
प्रो डी तंकप्पन नायर अब न रहे.... **अधिवक्ता (डॉ) बी मधु** 6

हिंदी पखवाड़ा समारोह – लघु रिपर्ट – **अर्चना एस** 7

राजा रविवर्माचरित महाकाव्य – **प्रो.डी.तंकप्पन नायर** 9

दर्शन माला (अनूदित व्याख्या) – **डॉ नेलसन डी** 11

मेहमान (कविता) – **परवूर सोमनाथन** 12

रंगमंच पर किन्नर समाज : एक जीवंत दस्तावेज़
अन्नपूर्णेश्वरी ए 13

पर्यावरण विमर्श और समकालीन हिंदी एवं भारतीय नेपाली कविता
(विशेष संदर्भ नरेश सक्सेना और मनप्रसाद सुब्बा की कविताएँ)
सबनम भुजेल 18

स्वाधीनता संग्राम में हिंदी साहित्यकारों का योगदान – **डॉ के भार्गवन** 22

दलित जीवन के प्रश्न और साहित्य – **डॉ अमित कुमार जायसवाल** 25

कामकाजी नारी के स्वरूपः चित्रा मुदगल की कहानियों के विशेष संदर्भ में
विष्णुप्रिया एस 29

असगर वजाहत के नाटकों में धर्म एवं सांस्कृतिक सौहार्द की भावना
नीरजा वी एस 32

श्रीमद्भगवदगीता : जीवनकला का मार्गदर्शक ग्रंथ
डॉ जयश्री कांतिलाल दवे/ डॉ समीर भूपेंद्रकुमार वाघरोडीया 35

इंतजार (कविता) - **प्रोफ हिल्डा जोसफ़** 38

किसान समस्याएँ : फ़ाँस उपन्यास के विशेष संदर्भ में - **डॉ धन्या बी** 39

मानस कैलास **मूलः मंजु वेल्लायणि**
अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर , डॉ.रंजीत रविशैलम 41

प्रश्नोत्तरी - **डॉ.रंजीत रविशैलम** 42

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 43

ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा)
मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार 45

मुखचित्र : स्वर्गीय प्रो डी तंकप्पन नायर (मुख्य संपादक, केरल ज्योति)

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फ़ाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 40/- आजीवन चंदा : रु. 4000/- वार्षिक चंदा : रु. 400/-

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल: संपादक : 7898515222/ 9447657301
khpsabha12@gmail.com
www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
अक्तूबर 2025

संपादकीय

'केरल ज्योति' के प्राण साहित्यकलानिधि प्रो डी तंकप्पन नायर स्मृतिशेष

अनेक दशकों से 'केरल ज्योति' के संपादक, मुख्य संपादक के रूप में सेवारत प्रो डी तंकप्पन नायर का स्वर्गवास तिरुवनंतपुरम में 24 सितंबर 2025 को हुआ। अपने 93 वर्ष की अवस्था में भी साहित्य एवं संपादन के क्षेत्र में अत्यंत प्रभावी तरीके से सक्रिय रहे। 'केरल ज्योति' पत्रिका आपके प्राण थी या यों कहें कि केरल ज्योति पत्रिका के आप प्राण थे। अर्थात् दोनों परस्पर पूरक एवं पर्यायवाची हैं। पत्रिका को देश-विदेश में प्रतिष्ठा दिलाने में आपने अपने तन-मन-धन समर्पण किया। बालपन से लेकर जीवन की इंतहा तक अक्षरशः अक्षरप्रेमी थे। आपकी योजनाएँ विविधरंगी थीं और उनकी प्रशंसा चहुँ ओर के विद्वानों-विदुषियों ने की थीं। स्नातक में विज्ञान के विद्यार्थी रहे प्रोफसर जी के दिल में राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा के प्रति अप्रतिम प्रेम फुट निकलने के पश्चात् आगरा विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर करने का ठोस निर्णय लिया। दिल्ली में रहकर हिमांशु जोशी के निकट आए और आजीवन उनके अंतरंगी रहे।

आपका हिंदी प्रेम अव्वल था। हिंदी सेवी के रूप में आपका आयाम बहुविध था। एक ओर प्राध्यापक तो दूसरी ओर अनुवादक तो तीसरी ओर संपादक थे। हिंदी के प्रचार-प्रसार में आपका महत्वपूर्ण योगदान हैं। बिषप मूर कॉलेज, मावेलिक्करा में बतौर प्रोफेसर एवं अध्यक्ष रहने के बाद केरल हिंदी प्रचार सभा के स्नातकोत्तर केंद्र के प्राचार्य बने और साथ में केरल ज्योति के संपादक मंडल में भी स्थान पाए। अनेक विशिष्ट एवं वरिष्ट शिष्य आपके हैं। सरकार-गौरसरकार अनेक पुरस्कार व सम्मान आपको प्राप्त हैं। केरल सरकार का प्रथम अनुवादक रत्नम पुरस्कार, सौहार्द सम्मान, महाराष्ट्र हिंदी साहित्य अकादमी पुरस्कार सहित अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार आपको प्राप्त है।

सौ से अधिक ग्रंथों का अनुवाद किया और श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य, के वासुदेवन पिल्लै स्मृति काव्य, राजारविवर्माचरित महाकाव्य सहित मौलिक रचनाएँ भी आपने की थीं। विस्तारभय के कारण उनके समग्र जीवन को यहाँ उकेरने में हम असमर्थ हैं। आपकी निष्ठा एवं उत्कृष्ट साहित्य सेवा को मद्दे नज़र रखते हुए गत वर्ष केरल हिंदी प्रचार सभा ने अपनी उच्च उपाधि 'साहित्यकलानिधि' प्रदान की। उस तिग्म आत्मा की ज्योति सदा ही प्रज्वलित रहेगी। नवोदित लेखकों, विद्याव्यसनियों के जीवन को दिवंगत महामनीषी का व्यक्ति-कृति जीवन प्रेरणादायी रहेगा। आपकी यादों व कर्मों के सामने हम नतमस्तक हैं। आपके अकस्मात ब्रह्मलीन के इस विदीर्ण अवसर पर समूचे केरल हिंदी प्रचार सभा परिवार संतप्त है और उस महान् हिंदी सेवी को हमारी भावभीनी श्रद्धांजलियाँ।

डॉ एम एस विनयचंद्रन
डॉ रंजीत रविशैलम

केरल हिंदी प्रचार सभा की वर्चस्व परंपरा के आचार्य प्रो डी तंकप्पन नायर अब न रहे....

अधिवक्ता (डॉ) बी मधु

24 सितंबर 2025 को दिवंगत डी तंकप्पन नायर दीर्घकाल से हिंदी-मलयालम-अंग्रेज़ी साहित्य के पारस्परिक भाषांतरण कार्य में कारयित्री प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्व के धनी कलमकार हैं। मृत्युपर्यंत भाषा एवं साहित्य की श्रीवृद्धि में यह सौम्य सारस्वत-साधक कर्मरत रहे। तिरानबे वर्ष की आयु में ही आप शिवलोक पहुँचे। इनके व्यक्तित्व की सबसे अहम बात इनकी ईमानदारी और कार्य के प्रति संपूर्ण निष्ठा का भाव है जो इनकी लेखनी का भी अभिन्न अंग है।

केरल हिंदी प्रचार सभा की कार्ययोजनाओं में आपकी सक्रिय भागीदारी सभा को प्राप्त होती रही। गत हिंदी पखवाड़ा समारोह के दौरान आयोजित संगोष्ठी में आपका अनुभवजन्य वक्तव्य-भाषण छात्र समूह को विशेष लाभकारी रहा।

प्रो तंकप्पन नायर सर का आकस्मिक निधन केरल हिंदी प्रचार सभा परिवार के लिए निश्चय ही अपूरणीय क्षति है। श्री के एल पॉल (मलयालम के कथाकार एवं तंकप्पन नायर का अंतरंगी मित्र) ने ही सर्वप्रथम यह दुखद समाचार टेलिफोण पर बता दिया। शहर में स्थित अपने घर के गुसलखाने में रात को पैर फ़िसलकर देहरी पर गिर पड़ने से उनके सिर पर गहरी चोट लगी। कोस्मोपोलिटन अस्पताल तक ले जाते-जाते ही उनके प्राण-पखेरू अपने नीड़ से सदा के लिए उड़ चल बसे।

2013 से 'केरलज्योति' मासिक के मुख्य संपादक का कार्यभार का निर्वहण करते आ रहे थे। मृत्यु के दो-एक दिन पूर्व भी सभा के प्रकाशन विभाग में पत्रिका-संपादन से जुड़े कार्य करते रहे। पत्रिका को स्तरीय एवं नियमित बनाये रखने में उनकी पकड़ सराहनीय रही। 4 जुलाई 2025 को आयोजित सम्मान एवं दीक्षांत समारोह में सभा की उच्च मानद उपाधि 'साहित्य कलानिधि' से उन्हें समादृत किया गया। अनुवाद-लेखन में आप बहुत बडे निपुण थे। अनुवाद के क्षेत्र में उनका नाम श्रद्धा के साथ इसलिए लिया जाता है कि मूलकृति की आत्मा को सुरक्षित रखने में वे पूर्णरूप से सफ़ल हुए हैं।

आपके मौलिक एवं अनूदित साहित्यिक जगत का परिचय देना विस्तार भय से तथा स्थानाभाव के कारण यहाँ संभव नहीं। 29 दिसंबर 1932 को तिरुवनंतपुरम जिले में आपका जन्म हुआ था। स्कूली एवं स्नातकीय शिक्षा के उपरांत आगरा विश्वविद्यालय के अधीन गाज़ियाबाद के एम एम एच कॉलेज में एम ए हिंदी का अध्ययन (1959-1961) किया था। आपने दिल्ली में स्थित ब्रिटिश राजदूतावास केंद्र में और भारतीय रेल कार्यालय में नौकरी की थी। बाद में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के कोचिन केंद्र में प्रबंधक के पद पर काम किया था। फ़िर मावेलिक्करा बिशपमूर कॉलेज में हिंदी का प्राध्यापक और विभागाध्यक्ष भी रहे। 1988 में सेवा निवृत्त होने के तुरंत बाद केरल हिंदी प्रचार सभा के स्नातकोत्तर केंद्र में प्राचार्य बने। हिंदी के उन्नयन में, सभा की कार्य-योजनाओं में, प्रचार-प्रसार संबंधी विकासोन्मुख मुद्दों में दूरदर्शिता से मूल्यवान मार्ग निर्देश एवं दिशा-बोध दिलाने में सचेत रहे। सृजनकार्य को प्रो तंकप्पन नायर ईश्वरीय वरदान मानते थे।

कीर्तिशेष प्रो डी तंकप्पन नायर को केरल हिंदी प्रचार सभा परिवार की गहरी संवेदना से सनी भावांजलियाँ सादर समर्पित !

मंत्री , केरल हिंदी प्रचार सभा

हिंदी पखवाड़ा समारोह - लघु रिपर्ट

अर्चना एस

केरल हिंदी प्रचार सभा में राज्यस्तरीय हिंदी पखवाड़ा समारोह 14-9-2025 से 29-9-2025 तक आयोजित किया गया।

केंद्र सरकार के केरल में स्थित कार्यालयों और कॉलेजों एवं श्री नारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय के संयुक्त सहयोग से ही हिंदी पखवाड़ा सम्मेलन मनाया गया। एम के वेलायुधन नायर प्रेक्षागृह में 16-09-2025 को संपन्न हुए समारोह में पूर्व विदेशकार्य सहमंत्री, भारत सरकार, श्री वी मुरलीधरन ने सम्मेलन का भव्य उद्घाटन किया। विकसित भारत में हिंदी भाषा एवं अन्य भाषाओं की महत्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख उन्होंने भाषण में दिया।

सभा के मंत्री अधिवक्ता (डॉ) मधु बी ने स्वागत भाषण दिया। अध्यक्षीय भाषण डॉ एस तंकमणी अम्मा ने किया, मुख्य वक्ता रहे श्री एम विजयकुमार (पूर्व अध्यक्ष केरल विधान सभा), डॉ जी गोपीनाथन (पूर्व कुलपति महात्मागाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय), डॉ आर शशिधरन (पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष, कुसाट), श्री एस गोपकुमार(अध्यक्ष, केरल हिंदी प्रचार सभा) एवं श्री जी सदानंदन (कोषाध्यक्ष) ने आशीर्वाद भाषण दिए।

प्रस्तुत कार्यक्रम में प्रो डी तंकप्पन नायर जी द्वारा विरचित 'श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य', डॉ जी गोपीनाथन, प्रो हिल्डा जोसफ और डॉ के एम मालती द्वारा संपादित 'केरल के हिंदी लघुकथाकार डॉ वी गोविंदशेनाय' शीर्षक ग्रंथों का लोकार्पण श्री वी मुरलीधरन द्वारा किया गया। यू एस एम पत्रिका (गाज़ियाबाद) के 'केरल विशेषांक' का (अतिथि संपादक हैं डॉ एम एस विनयचंद्रन)भी प्रकाशन किया गया।

हिंदी पखवाड़ा समारोह के दौरान 17.09.2025 को 'वैश्विक संदर्भ में हिंदी' विषय पर श्रीनारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय, कोल्लम के सहयोग से संगोष्ठी चलाई गई। कुलपति प्रो(डॉ) जगतीराज वी पी ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। प्रो (डॉ) श्रीलता विष्णु ने अध्यक्षीय भाषण दिया। डॉ जयप्रकाश एम (सिंडिकेट सदस्य), डॉ सुनिल कुमार एस (केरल हिंदी प्रचार सभा) और डॉ षाजी एन (एस एन कॉलेज) ने आशीर्वाद भाषण दिए।

आलसेईंट्स कॉलेज, तिरुवनंतपुरम के सहयोग से प्रायोजित संगोष्ठी का भव्य उद्घाटन 17-09-2025 को केरल हिंदी प्रचार सभा के मंत्री अधिवक्ता (डॉ) बी मधु जी ने किया। 22-09-2025 को 'हिंदी के विकास के लिए नई राष्ट्रीय नीति का योगदान' विषय पर आचार्य कॉलेज (बी एड्) के तत्वावधान में संगोष्ठी चलाई गई।संगोष्ठी का उद्घाटन केरल राज्य सरकार के पूर्व मंत्री श्री बाबु दिवाकरन ने किया। केरल विश्वविद्यालय हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो(डॉ) हेरमन पी जे मुख्यातिथि रहे। ख्यातिप्राप्त रचनाकार एवं अनुवादक डॉ के सी अजयकुमार (अध्यक्ष, राज्यस्तरीय हिंदी पखवाड़ा समारोह समिति) सम्मेलन के सभापति रहे। डॉ सुमा एस ने (पूर्व प्राचार्या, सरकारी आर्ट्स & साइन्स कॉलेज, मलयिनकीष़्) मुख्य भाषण दिया। श्रीमती अनामिका अनु द्वारा रचित 'येनपक कथा और अन्य कहानियाँ' शीर्षक ग्रंथ का लोकार्पण भी इसी समारोह में संपन्न हुआ। डॉ एस श्रीकुमार (सहायक आचार्य, आचार्य बी एड कॉलेज, केरल हिंदी प्रचार सभा) जी ने कृतज्ञता ज्ञापित की।

22.09.2025 को एक और संगोष्ठी महात्मागाँधी कॉलेज के हिंदी विभाग के सहयोग से चलाई गई। डॉ श्रीजा वी आर (सह आचार्या हिंदी विभाग, महात्मागांधी कॉलेज) ने स्वागत भाषण दिया।

कार्यक्रम का उद्घाटन डॉ आनंदकुमार वी एम (प्राचार्य, महात्मा गाँधी महाविद्यालय) ने किया। डॉ गायत्री एन ने (हिंदी विभागाध्यक्षा) संगोष्ठी की अध्यक्षता की। डॉ

एम एस विनयचंद्रन जी (केरल ज्योति के संपादक एवं उपाध्यक्ष राज्यस्तरीय हिंदी पखवाडा समारोह समिति) ने 'केरल में हिंदी प्रचार एवं रोज़गार की संभावनाएँ' विषय पर मुख्य भाषण दिया। प्रो(डॉ) चित्रा वी एस और डॉ राजेशकुमार आर ने आशीर्वाद वचन दिए। निम्मी जोसफ ने कृतज्ञता ज्ञापित की।

23-9-2025 को केरल हिंदी प्रचार सभा के एम के वेलायुधन नायर प्रेक्षागृह में विद्यालयों और महाविद्यालयों के छात्रों के लिए विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

स्वागत भाषण श्री सोमशेखरन नायर बी द्वारा दिया गया। कार्यक्रम का उद्घाटन प्रो(डॉ) बी अशोक जी ने (सिंडिकेट सदस्य, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय एवं हिंदी विभागाध्यक्ष, यूनिवेर्सिटी कॉलेज) किया। अध्यक्षीय भाषण श्री गोपकुमार एस ने किया। डॉ एम एस विनयचंद्रन ने आशीर्वचन दिया। डॉ रंजीत रविशैलम (संयोजक, राज्यस्तरीय हिंदी पखवाड़ा समारोह समिति) ने आभार प्रकट कर दिया। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद विभिन्न मंचों पर प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं।

25-9-2025 को सरकारी वनिता कॉलेज की सहभागिता में हिंदी विभाग द्वारा एक संगोष्ठी चलाई गई। विषय रहा 'इक्कीसवीं सदी में हिंदी का बदलता स्वरूप'। विभागाध्यक्षा प्रो (डॉ) शम्ली एम एम ने स्वागत भाषण दिया। डॉ एस तंकमणि अम्मा (पूर्व विभागाध्यक्षा, केरल विश्वविद्यालय एवं राज्यस्तरीय हिंदी पखवाड़ा समारोह समिति की चेयरपर्सन) ने संगोष्ठी का उद्घाटन किया। अध्यक्षीय भाषण यूनिवेर्सिटी महाविद्यालय के हिंदी विभाग का अध्यक्ष प्रो (डॉ) बी अशोक जी ने किया। प्रो(डॉ) ज्योति एन ने कृतज्ञता ज्ञापित की।

25-09-2025 को आयोजित भारतीय भाषा कवि सम्मेलन केरल हिंदी प्रचार सभा के बुजुर्ग हिंदी सेवी एवं केरल ज्योति के मुख्यसंपादक प्रो डी तंकप्पन नायर के आकस्मिक निधन के कारण स्थगित करना पड़ा। शाम को एक शोक-सभा आयोजित की गई।

26-9-2025 को श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय वंचियूर क्षेत्रीय कार्यालय की सहभागिता में राजभाषा : संवर्धन के आयाम' विषय पर संगोष्ठी चलाई गई। डॉ आर कमलाकुमारी, निदेशक क्षेत्रीय केंद्र ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। डॉ ओमना पी वी ने अध्यक्षता की। डॉ एस आर श्रीकला (यूनिवेर्सिटी कॉलेज) ने बीज भाषण प्रस्तुत किया। केरल ज्योति के संपादक एवं राज्यस्तरीय हिंदी पखवाड़ा समारोह समिति के संयोजक डॉ रंजित रविशैलम समारोह में मुख्य अतिथि रहे। डॉ श्रीकला एम नायर (दर्शन विभाग) डॉ निषाद टी आर (वेदांत विभाग), डॉ निमिता आर (मलयालम विभाग) ने आशीर्वाद भाषण दिए। शोधार्थी श्रीमती आशा एस विक्टर ने धन्यवाद प्रकट किया।

29.9.2025 को हिंदी पक्षाचरण समारोह का समापन संपन्न हुआ। केरल हिंदी प्रचार सभा के मंत्री अधिवक्ता (डॉ) बी मधु जी ने स्वागत भाषण दिया। पूर्व गृहमंत्री केरल सरकार श्री रमेश चेन्नित्तला जी ने सम्मेलन का उद्घाटन कर दिया। इस अवसर पर तीन पुस्तकों का विमोचन भी हुआ। श्री ए पोन्नय्यन द्वारा अनूदित ग्रंथ 'ए ओ ब्यूम - राष्ट्रीय संघ के पिता' डॉ जे उमाकुमारी द्वारा अनूदित रचना 'शक्ति भद्रन' (मूलः श्री बाबु जी नायर), एस महादेवन तंपी द्वारा रचित मलयालम उपन्यास का डॉ पी जे शिवकुमार द्वारा अनूदित 'मृत्युसूत्र'- लोकार्पित हुए।

अध्यक्षीय भाषण श्री अलक्साण्डर जेकब (पूर्व डी जी पी केरल) ने किया। कार्यक्रम में मुख्य वक्ता केरल विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की पूर्व अध्यक्षा डॉ एस तंकमणि अम्मा रही। सर्वश्री डॉ मधुबाला जयचंद्रन, प्रो के जे रमाबाई, बाबु जी नायर, डॉ एम एस विनयचंद्रन और सदानंदन जी भी मंच पर उपस्थित रहे। केरल हिंदी प्रचार सभा के अध्यक्ष श्री एस गोपकुमार जी ने कृतज्ञता ज्ञापित की। स्कूल और कॉलेज स्तर के विद्यार्थियों के लिए आयोजित प्रतियोगिताओं में विजेताओं को पुरस्कार भी वितरित किये गये।

(प्रकाशन संयोजिका)

राजा रविवर्माचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

तीसरा सर्ग

रविवर्मा का राष्ट्रीय दृष्टिकोण

1. विख्यात कला-साहित्य समीक्षक एवं प्रसिद्ध भारतीय
पुरातत्वज्ञ डॉ.एम.जी.शशिभूषण के मत में वास्तव में
एक सार्थक तीर्थाटन है रविवार्मा के राष्ट्रीय दृष्टिकोण को
गढ़नेवाली परिस्थितियों का अन्वेषण व अध्ययन।

2. उनके कला जीवन के अन्तिम दिनों में भारत में जम गयी
थी राष्ट्रीयता राजनीतिक तौर पर और उसके पहले भी
भारत में रही थी धार्मिक एवं भौगोलिक एक राष्ट्रीय
संकल्पना फिर भी उसमें स्पष्टता बहुत कम रही थी निस्संदेह।

3. उनके द्वारा की गयी उत्तर भारत की यात्राओं में और
सयाजीरावु गेयिकवाद और स्वामी विवेकानन्द की
प्रेरणा के कारण ही आकृष्ट हुए वे नरम हिन्दू देशीयता
की तरफ़ और तदनंतर रचे चित्र परिचायक हैं इसके।

4. इसी दृष्टिकोण के फलस्वरूप रचना की उन्होंने अनेक चित्रों की
जो थे पुराण कथाओं एवं देवी-देवताओं के आधार पर जिनमें
प्रमुख थे शकुन्तला, दमयन्ति, सीता, सैरंध्री आदि के चित्र जिनमें
केरलीय सौंदर्य न होने के पीछे भी था उनका भारतीय दृष्टिकोण।

5. यही देशीय भावना रही होगी सिर पर चमेली के फूलों से
अलंकृत नायर महिला, सद्यस्नाता नायर युवति, स्वरबत का
वादन करनेवाली तमिल महिला, फलों का थाल लेकर खड़ी
मराठी महिला, पारसी महिला आदि चित्रों की रचना के पीछे भी।

6. प्रस्तुत देशीय भावना ही थी पारसी वनिता, भील युवति
और रजपुत्र सिपाही के चित्र रचने के पीछे भी और विविध
प्रान्तों के संगीतज्ञों को इकट्ठे चित्रण करनेवाला संगीत की
विशिष्ट मण्डली शीर्षक चित्र में भी है यही देशीय भावना।

7. इसी देशीय भावना ने की होगी रविवर्मा की सहायता
शिवजी और महाराणा प्रताप के चित्रों को खींचने में भी
और इसी भावना में अन्तर्लीन है कि क्यों उन्होंने नहीं
खींचा टीपू सुल्तान या बादशाह अकबर का चित्र ।

8. प्रेरणा पाकर ही देशीय भावना से रविवर्मा ने भरसक
टालकर प्रादेशिक आम वेशभूषा को अपने चित्रों में एक
आम वेश का किया था प्रचार जिसके पीछे उनका विचार था
दूसरा कारण दीर्घ काल तक प्रचलित मुगल शासन।

9. मुगल शासन काल में ही प्रचार हुआ था प्रत्येक वर्ग एवं
प्रत्येक जाति की विशेष वेशभूषा का और इसीलिए चाहा
रविवर्मा ने कि सब के लिए स्वीकारने योग्य एक आदर्श
वेशभूषा ही अपने चित्रों में हो जो था एक सार्थक दृष्टिकोण।

10. रविवर्मा की दृष्टि में महाराष्ट्र में तब प्रचलित पाँच गज
लंबी साड़ी थी महिलाओं केलिए देशीय वेष और इस संबन्ध में
एक उल्लेख मिलता है उनके भाई राजराजवर्मा द्वारा
उन्नीस सौ एक अगस्त सात को डायरी में लिखी बात में।

11. भाई ने लिखा था डायरी में कि भाईसेत नामक एक
महिला ने साड़ी के वेष में अपने रूप चित्र की माँग की थी
और राजराजवर्मा ने बताया कि मुश्किल है अच्छी तरह
साड़ी खींचना जो परिचायक है भाईओं के दृष्टिकोण का।

12. उन्नीस सौ सात में मोडेर्न रिव्यू के संपादक ने प्रकट किया
अपना दुःख कि और एक खूबसूरत वेश का पता नहीं लगा सके
तोड़कर प्रादेशिक अभिमान के आवरण को और बनने को देशीय
धारा का भाग रविवर्मा को सहायक हुआ कई नगरों में उनका वास।

13. रविवर्मा को मिला मुंबई, बरोड़ा आदि पश्चिमी भारत के
नगरों में वास करने का अवसर और आशय विनिमय किया उस
समय के प्रमुख व्यक्तियों से जो सहायक हुआ देशीय धारा का भाग
बनने को जिससे उनकी चित्र रचना हुई अभिव्यक्ति देशीय बोध की।

14. रविवर्मा के परिचितों में प्रमुख थे गोपालकृष्ण गोखले,
दादाभायी नवरोजी, सयाजीराव गेयिकवाद, सर.टी.
माधव राव, सर शेषय्या शास्त्रिकळ्, जनरल मक्केन्सी,
गवर्नर विल्लिंगटण और निम्न लिखित अनेक व्यक्ति।

15. और थे परिचित प्रमुख व्यक्तियों में मलयालि
मेम्मोरियल के स्थापकों में से एक के.पी.शंकर मेनोन,
जस्टिस पार्टी के संस्थापक डॉ.टी.एम.नायर, इंण्डियन नाशनल
कोंग्रस के पूर्व अध्यक्ष सर.टी.शंकरन नायर प्रभृति।

16. उपर्युक्त के अतिरिक्त जी.परमेश्वरन पिल्लै, हिन्दू का
पूर्व संपादक जी.करुणाकर मेनोन, एम.राजराज वर्मा,
कोच्ची राजपरिवार का सदस्य प्रिन्स रविवर्मा, डॉ.पी.एम
मत्तायी आदि थे रविवर्मा के हितैषी और अंतरंग मित्र। (क्रमशः)

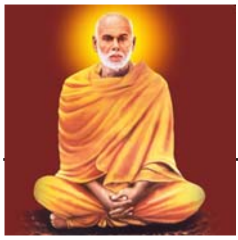

दर्शन माला

डॉ नेलसन डी

अध्यारोप दर्शन

(केरल के महान संत, ऋषि-कवि, समाज सुधारक श्रीनारायणगुरु द्वारा संस्कृत में रची गई वेदांत-संबंधी रचना है 'दर्शनमाला।' दस-दस श्लोकों के दस भाग इसमें समाहित हैं। मुनि नारायण प्रसाद की मलयालम-व्याख्या का हिंदी भाषांतरण डॉ नेलसन डी ने तैयार किया है। - संपादक)

अध्याय 1

आसीदग्रेf सदेवेदं भुवनं स्वप्रवत् पुनः।
ससर्ज सर्वं संकल्पमात्रेण परमेश्वरः।।

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

ऐसी दशा में "सत् एव आसीत्" के स्थान पर "असत् एव आसीत" - इस प्रकार अन्वय करके अर्थ कहना उचित होगा। दोनों प्रकार के अन्वय करने की अनुमति संस्कृत व्याकरण में है। बाद में कारण के रूप में दूसरे अध्याय में और अनध्यस्त के रूप में पाँचवें अध्याय में भी बताया गया है कि सब केवल सन्मात्र हैं।

यहाँ विचार-विषय 'इदं भुवनम्' (यह संसार) है। चूँकि सब इसमें होता है; उत्पन्न होता है इसलिए प्रपंच को भुवन कहते हैं। इसलिए यह प्रश्न भी उठता है कि यह किसने बनाया, कैसे बनाया? उत्तर यही है कि परमेश्वर ने बनाया। इस अध्याय के अंत में व्यक्त होगा कि वह परमेश्वर एक व्यक्ति था आराधना मूर्ति नहीं। परमेश्वर आदिम 'सत्' ही है।

परमेश्वर ने कैसे बनाया? स्वप्न की तरह सृष्टि की। स्वप्न में दिखाई देनेवाले सब स्वप्न देखने वाले के मन से रूप लेते हैं। स्वप्न देखनेवाले से और उसके मन से अलग करके एक सच्चाई स्वप्न की नहीं होती। यही नहीं, स्वप्न के अनुभव की सच्चाई केवल स्वप्न से जागरण होने के क्षण तक कायम रहती है। यह संसार परमेश्वर का देखा हुआ एक स्वप्न है। ऐसी दशा में व्यक्त होता है कि केवल परमेश्वर के मन में इस संसार की सच्चाई होती है।

स्वप्न केवल तब तक कायम रहता है जब स्वप्न देखने वाला जाग जाता है। जो स्वप्न देख रहा था उसके जाग उठने पर संपूर्ण स्वप्न उसमें ही ओझल हो जाता है। जब परमेश्वर भी स्वप्न से जाग उठते हैं तब समस्त प्रपंच को परमेश्वर में ओझल होना पड़ता है। फिर केवल परमेश्वर ही शेष रहेगा। ऐसी दशा के लिए वेदांत सहमत है कि केवल कारण वस्तु की सच्चाई होती है।

यह परमेश्वर कब जागेगा? जब सत्यान्वेषक सत्य का आविष्कार करता है तब आपके द्वारा देखा गया समस्त प्रपंच भी ओझल होता है। यहाँ कहा गया सत्य वही परमेश्वर है। सत्यान्वेषक जब सत्य

का आविष्कार करता है तब परमेश्वर में सब विलीन हो जाता है। अतः कहा जा सकता है कि सत्यान्वेषक का सत्य-साक्षात्कार निद्रा से परमेश्वर का जागरण है। यहाँ सत्यान्वेषक जागता है या परमेश्वर दोनों हैं, दोनों दो नहीं हैं।

निर्माण किया के अर्थ में यहाँ 'ससर्ज' का प्रयोग करता है। ससर्जन से मतलब है कि जो पहले था उसमें ओझल होने वाली संभावनाओं को बाहर निकालना। यहाँ पहले ही जो था वह परमेश्वर है। स्वप्न की तरह परमेश्वर के मन में ओझल होनेवाली संभावनाओं को स्वप्न के समान बाहर लेकर देखता है। यही साधारणतः हमसे देखे जानेवाले स्वप्न की दशा है। इस प्रकार उत्तर दे दिया कि सृष्टि की प्रक्रिया कैसे की गई।

'अग्रे' का मतलब है कि आदि में। सृष्टि को यथार्थ सा जब मानते हैं तब हम इस तरह 'अग्रे' का अर्थ समझेंगे कि पहले क्या था। लेकिन सूक्ष्मता से देखते समय समझ में आएगा कि परमेश्वर के स्वप्न के अलावा और कुछ भी नहीं हुआ है। उस समय कहना पड़ेगा कि 'अग्रे' का अर्थ स्वप्न खुलकर आने के पहले की दशा है। वास्तव में परमेश्वर के स्वप्न का कोई अन्य नहीं है। वह एक बार शुरू हुआ नहीं कि उसका अंत भी कभी नहीं होगा। वह निरंतर चलता रहता है।

इस प्रकार देखते समय मानना पड़ेगा कि अनंत स्वप्न की संभावना को रखनेवाले, केवल तत्त्व होकर रहने वाले परमेश्वर की सूचना 'अग्रे' द्वारा दी गई है। कालपर आदि के रूप में उसे न देखें, तत्त्व पर आदि के रूप में देख सकते हैं।

अगले श्लोक में कहा गया है कि सृष्टि के पूर्व यह प्रपंच परमेश्वर में किस प्रकार ओझल हो गया था।

(क्रमशः)

कविता

मेहमान

परवूर सोमनाथन

पहुँचूँगा मैं हर एक भवन में
उस दिन वहाँ के मेहमान बनूँगा
विलाप से स्वीकार करेंगे वे
निकट के रिस्तेदार अति दुख से।

धर्म-भेद नहीं मुझे
समाज के अमीर गरीब
एक समान है मुझे
अमीर से ममता भी नहीं।

धरती के सभी जीव
सदा ड़रते हैं मुझसे
भूतल के व्याकुल से
देता हूँ मुक्ति सभी को।

मानव-वर्ग जानते हैं मुझे
मैं हूँ जग की सच्चाई
मैं नहीं हूँ तो जीव-राशि नहीं,
मेरा नाम है मृत्यु।

परवूर सोमनाथन, (पी सोमन पिल्लै)
हिंदी प्रचारक, उदया हिंदी कॉलेज
दः परवूर (कोल्लम)
मोः 9142204086

रंगमंच पर किन्नर समाज : एक जीवंत दस्तावेज़

अन्नपूर्णेश्वरी ए

शोध सारः समकालीन समय विभिन्न विमर्शों का दौर हैं। स्त्री, दलित, आदिवासी, बाल, पर्यावरण, वृद्ध आदि अनेक विमर्श आज साहित्य में मौजूद हैं। दबे हुए आवाज़ को बुलंद करते हुए आज किन्नर विमर्श ने भी साहित्य में अपनी जगह बना ली है। माना कि अभी किशोरावस्था में है, लेकिन जल्द ही पूरे साहित्य क्षेत्र में जलती हुई चिंगारी के समान फैल जाएगा और कोई बुझा भी न सकेगा। मनुष्य होने पर भी किन्नर समुदाय को हाशिये पर दखेल दिया गया है। उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, आत्मकथा जैसे साहित्य की सभी विधाओं में किन्नर विमर्श की झलक दिखने लगी है। किन्नर समाज का सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं बेरोज़गारी जैसे जटिल समस्याओं का विश्लेषण रचनाकारों ने अपने साहित्यिक विधाओं के ज़रिए प्रकट किया है। भरत वेद, हरीश बि शर्मा, रमा पाण्डेय इन तीनों नाटककारों ने बहुत संवेदनशील ढंग से अपने नाटक 'शिखंडी', 'हरारत', 'लल्लन मिस' के ज़रिए जीवन के बुनियादी अधिकारों से वंचित किन्नर समाज की स्थिति-गतियों से पाठकों को अवगत कराने का सफल प्रयास किया है। आशा है कि इनका यह प्रयास किन्नर समाज को समाज के मुख्य दायरे में लाने वास्ते सार्थक बने।

बीजशब्दः समकालीन हिन्दी साहित्य, नाटक, किन्नर विमर्श, अस्तित्व, शोषण, किन्नर समुदाय।

मूल आलेखः नाटक पठित होकर भी इसकी रंगमंचीयता इसे जीवंत करके अन्य विधाओं से पृथक करती है। नाटक का प्राण-तत्त्व संवाद है। इसी के माध्यम से कथा का प्रवाह, पात्र-सृष्टि का विस्तार और भाषा का संचार होता है। महिम भट्ट के मतानुसार- "अनुभव, विभावादि के वर्णन से जब आनंदोपालब्धि होती है तब रचना 'काव्य' कहलाती है और जब गीतादि से रंजीत, नटों-द्वारा उसका प्रयोग दिखाया जाता है तब वह नाटक बन जाता है।[1]" बीसवीं शताब्दी से विमर्शों का जो नया दौर चला जहाँ पर उपेक्षितों को स्थान मिला। हिंदी साहित्य की प्रायः समग्र विधाओं में किन्नर-केंद्रित रचनाओं का सृजन बीसवीं शताब्दी से ही प्राप्त है। लेकिन नाटक के क्षेत्र में सबसे पहले भरत वेद द्वारा लिखित और निर्देशित नाटक 'शिखण्डी' के 1996 में मंचन होने की जानकारी और प्रमाण प्राप्त है। इसी दिशा में महेश दत्तानी द्वारा अंग्रेजी में लिखित 'सेवन स्टेप्स एरऑउन्ड दि फायर' अर्थात 'आग के सात फेरे'(2008) और हरीश बी.शर्मा के लघु नाटक 'हरारत'(2003) और रमा पाण्डेय द्वारा लिखित 'लल्लन मिस'(2021) का भी संदर्भ मिलता है।

भरत वेद द्वारा लिखित और निर्देशित नाटक है 'शिखण्डी'। शिखंडी शीर्षक पर उपन्यास, काव्य और नाटक भी लिखे गए जिनमें महाभारत कालीन पात्र शिखंडी को केंद्र में रखकर आज के किन्नरों की स्थिति से अवगत कराने की कोशिश किया गया है। नाटक के प्रमुख पात्र हैं- नरमादा और उसके साथी कीरन और रमजानी, नेता दौलतराम निर्देशक, आदि। लेखक को हिजड़ा शब्द अपमानजनक आभासित होता है इसलिए नरमादा के ज़रिए उसके स्थान पर शिखंडी के प्रयोग को उपयुक्तमानता है।-"हिजड़ा समाज नहीं, शिखंडी समाज बोलें।"[2] यह नाटक किन्नरों के प्रति राजनीतिक दल के झूठे वादे और उनके दोहरे बर्ताव का पर्दाफाश करता है। जब चुनाव आती है तब नेताओं को बेचारे किन्नरों की याद आती है। यहाँ पर भी दौलतराम नामक नेता चुनाव हेतु झूठा दिलासा देने के लिए पहुँचता है।

जब सभा में नरमादा प्रवेश करती है तो दौलतराम उसे देवी कहकर संबोधन करता है। इसमें क्रोधित होकर वह कहती है कि - "न मैं देवी हूँ न देवता। न नर हूँ, न मादा। मैं नरमादा हूँ, नरमादा शिखंडी। और आप लोगों की उपेक्षा हूँ, जिसे आपकी दुनिया हिजड़े के नाम से जानती है।"[3] यहाँ पर दोनों के बीच बहस चलता है कि नेता लोग तो सिर्फ लूटते हैं, किसीका भलाई नहीं करते। जब दौलतराम उसके द्वारा किये गए कार्यों का लिस्ट देने लगता है तो वह

उन सब बातों का खण्डन करती है। और कहती है - "क्या बकवास है मेरी कथनी कि तुम्हारी करनी। अरे असली शिखंडी तुम जैसे लोग हैं।"[4] नरमादा नेता लोगों की स्वार्थ वृत्ति को समझ जाती है, इसलिए वह उसके झांसे में नहीं आती, उल्टे उसकी पोल खोलकर रख देती है - "पिछले दो बार से तूने मुझे रुपए दिलवाए थे और मैं चुप रही पर अब मैं रुपये नहीं लूँगी।"[5]

आगे नरमादा दौलतराम के सामने चार शर्त रखती हैं। 'आपको हमारा शिखंडी समाज का नेतृत्व करना होगा,' 'हमारे सदस्यों को सम्मानित धंधे अथवा रोज़गार दिलाने के लिए शासन से माँग करनी होगी, हमारी बिरादरी में से किसी एक को राज्य सभा में सदस्या मनोनित कराने हेतु संघर्ष करनी होगी', "हमारी उन्नति के लिए शासन एक आयोग गठित करेगी और उसके पदाधिकारी हमारे बीच कुछ दिन रहेंगे ताकि हमारी दशा को करीब से समझ कर सरकार को ठोस रिपोर्ट व सिफारिश पेश कर सकें।"[6] दौलतराम उसकी सारी शर्तों को मंजूरी देता है। किन्तु वे लोग जानते थे कि यह सब उनका दिखावा है वोट के खातिर। जब वोट लेकर जीतेंगे तो गिरगिट की तरह अपने रंग बदलेंगे। इसलिए कीरन चेतावनी देती है कि -"किन्तु यदि जीतने के बाद हमारी मांगों पर कोई कारवाही नहीं करेंगे। कोई आंदोलन नहीं करेंगे तो उन्हें दो माह तक हमारे बीच रहना होगा। यही उनकी सजा होगी। क्या दौलतराम जी को यह मंजूर है, यदि हाँ तो वह लिखित में देना होगा।"[7] यहाँ पर हम राजनीतिज्ञों का मुखौटा हकीकत समझकर और उसके खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद किये किन्नर समाज को देख सकते हैं।

वे अपनी जीविका के लिए परंपरागत धंधे को अपनाते हैं, इसके अलावा उनके पास दूसरा रास्ता भी नहीं है। जब उनसे पूछा जाता है कि परंपरागत धंधे को छोड़कर आगे क्या बनना चाहेंगे? तो वह उसका उत्तर देती है कि- "मैं राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री बनूँगी.....। क्योंकि यदि दो पद शक्तिशाली है, इस पद में आने के बाद मैं शिखंडी जाति के लोगों को प्रतिष्ठित पदों पर रख सकूँगी। उनकी शिक्षा का विशेष व्यवस्था कर सकूँगी।........ मैं दुनिया को बताना चाहती हूँ कि हम आधे अधूरे लोगों को अंधेरे कुएं में सभ्य समाज ने धकेल रखा है। जिन शिखंडियों को दुनियाँ ने जमाने से शोषण किया, दबाया है वह शिखंडी समाज आज कुंठाग्रस्त जीवन व्यतीत कर रहा है। इस लिए मेरे शासन काल में हिजड़े जाति को नया जन्म मिलेगा। तभी हम आधे अधूरे लोग पूर्णता प्राप्त कर सकेंगे।"[8] इससे यह साबित होता है कि किन्नर समाज अपने अस्तित्व को पहचानने लगे हैं। वे उपर उठना चाहते हैं, और सभ्य समाज में अपनी जगह बनाना चाहते हैं। दो साल बाद जब दौलतराम फिर से झूठे दिलासों के साथ वहाँ पहुँचता है तो उसे जूते का हार लेकर चारों तरफ से घेरते हैं और गले में जूते चप्पल का हार पहनाकर पकड़ कर झुलाते हैं, उठक बैठक कराते हैं, चेहरे में कालिख पोत कर नचाते हैं। गले में तख्ती टाँग कर धोती कपड़े उतारते हैं फिर भागने के लिए छोड़ देते हैं। नरमादा कहती है कि "हमारी नस्ल सुधारने चला था। क्या सुधारेगा हम खुद सुधरेंगे। अपनी आवाज हम खुद बुलंद करेंगे।"[9] अंत में "देश भर के शिखंडी एक हो एक हो"[10] नारे के साथ नाटक की परिसमाप्ति होती है। यहाँ पर नेताओं के खोखले आदर्शों और झूठे दिलासे की परिसमाप्ति वे खुद करते हैं। अंततः प्रस्तुत नाटक में शिखंडियों के लिए रोजगार धंधे की माँग को प्रमुखतः पाठकों के सामने रखा हैं। साथ ही राज्यसभा में प्रतिनिधित्व की माँग और समग्र समस्याओं का समाधान हेतु पृथक आयोग की गठन का स्वर भी बुलंद है। किन्नरों को हाशिये से मुख्यधारा में लाने के लक्ष्य को लेकर लिखा गया प्रस्तुत नाटक पूरी तरह से सफल सिद्ध हुआ है।

हरीश बी शर्मा द्वारा लिखित लघु नाटक 'हरारत' मानवीय संवेदना को छूता हुआ दिखाई देता है। किन्नर में भी मानवीय संवेदनाएँ कूट कूट कर भरी हैं किन्तु उनके प्रति समाज की संवेदनाएँ न के बराबर हैं। आजकल के समाज में मानवीय संवेदनाओं का जो हास हो रहा है उसका खुलासा करता है यह नाटक। नाटक में मूलतः दो प्रमुख पात्र है- एक चंपा (किन्नर) और शशि (अविवाहित स्त्री)। शशि जो प्यार में धोखा खा चुकी है, अपने बच्चे और खुद को अपनी धोखेबाज़ प्रेमी और अपने घरवालों से बचाने के लिए घर छोड़ देती है। क्योंकि वे दोनों उस बच्ची को जन्म से पहले ही मारने की कोशिश में लगे हुए थे। लेकिन शशि उनके चंगुल से बचकर रेलगाड़ी में चढ़ जाती है। रेलगाड़ी में वह टीटी से बचते-बचते अकबर, पप्पू और बाबलू

नामक गुंडों के हाथ लग जाती है। उसे लगा कि टीटी से बचानेवाले ये लोग उसकी मदत करेंगे। लेकिन उसकी मदत करने की बजाय वे उसकी शोषण करने पर उतर आते हैं। उनके संवादों से यह साफ दिख रहा हैं कि मानवीयता नामक चीज़ तो उनमें अशेष नहीं। अकबर, पप्पू और बाबलू ये तीनों पात्र नारी को केवल भोग्य वस्तु समझनेवाले पुरुष वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। "आज तक फायदा ही तो उठाते हो मर्द होने का फायदा। मुगलसराय से यहाँ तक सारे मर्द एक से नाटक करते हैं, मद्दगार बनने का फिर कर्जा चढ़ा देते हैं।"[11] शशि के मुँह से निकली ये शब्द इस बात पर ओर ज़ोर देते हैं।

जो समाज किन्नर को केवल हास्यपात्र के रूप में देखता है, वही किन्नर आज शशि के साथ मानवीयता दिखाती है। सभ्य कहे जानेवाले यह समाज जिस किन्नर को अमानवीय मानता है, वास्तव में मानवीयता की मिसाल वही लोग है। शशि को उसकी विषम स्थिति में चंपा ही उसका साथ देती है। चंपा उस मृगीय समाज से उसे बचाकर अपने साथ ले जाती है और उसका संरक्षण करती है। चंपा शशि की दवा, डॉक्टर, दाई, फल हर तरह से ऐसे सेवा करती है जैसे कोई अपना हो। यहाँ पर शशि और उसकी बच्चे को लेकर चंपा की मातृत्व भावना जागते हुए हम देख सकते हैं। "तू कान खोलकर सुन ले, पैदा होते ही सबसे पहले मैं गोद में लूँगी..... उसने मुझे माँ पुकारा..... नहीं चंपा....... माँ नहीं हो सकती रे, बच्चा है न, जानता नहीं, दुनियादारी। बाहर आयेगा, कुछ समझेगा-परखेगा तो भूल जायेगा।"[12] किन्नर मन की संवेदनाएँ नाटककार ने बखूबी से इस नाटक में प्रस्तुत किया है। शशि बच्चे को जन्म देते ही उसे चंपा को सौंप कर स्वर्गवास हो जाती है।

यह नाटक इस बात पर सवाल करती है कि क्या एक किन्नर माँ-बाप का किरदार निभा नहीं सकता? मानव होने के नाते उनमें मानवीय भावनाएँ समाहित है उसके बावजूद भी बच्चे को गोद लेने में, माँ बनके उसका पालन पोषण करने में उन्हें क्यों मना कर देते हैं? इन्हीं सवालों को लेकर पाठकों को सोचने के लिए मज़बूर कराना ही नाटक का मुख्य उद्देश्य है, जो सफल होकर प्रतिमान स्थापित करता है। नाटक 'हरारत' इस बात पर ज़ोर देती है कि किन्नरों में मानवीय मूल्यों की कोई कमी नहीं हैं, कमी हमारी सोच में है। इस विषय को लेकर बहुत कुछ सोचने के लिए प्रस्तुत नाटक विवश भी करता है।

'लल्लन मिस' प्रसिद्ध लेखिका रमा पाण्डेय द्वारा लिखा गया नाटक है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें फिल्मी डॉ.क्यू ड्रामा की तकनीकी का प्रयोग किया है। यह नाटक वास्तविक कहानी पर आधारित है। लल्लन नामक किन्नर द्वारा बच्चों के भविष्य के लिए स्कूल निर्माण करने की इच्छा को भू-माफिया द्वारा तहस नहस करने की कोशिश को इस नाटक में दर्शाया गया है। इस नाटक में खुद लेखिका भी एक प्रमुख पात्र बन गई है जो इस कहानी को अंत तक ले जाती है। नाटक की शुरुआत एक गीत से होती है जो लल्लन की ज़िंदगी को बयान करती है। रमा पाण्डेय का सोनल नामक किन्नर से मुलाकात होती है, वहीं से नाटक की कहानी शुरू होती है। सिगनल में रुकी गाड़ी से रमा देखती है कि सोनल और हवलदार के बीच झगड़ा हो रहा है। हवलदार जो है किन्नरों से पैसा वसूलते हैं। अगर नहीं दिया तो मारकर भगा देते है और सिगनल में भीख माँगने नहीं देते। यहाँ पर सोनल के साथ भी यही होता है। सोनल चिल्लाने लगती है कि- "मैं किन्नर हूँ रण्डी नहीं हूँ। खबरदार जो मुझे हाथ लगाया। बधाई माँगना मेरा हक है। कोई जुर्म नहीं सड़क पर खड़ी रहती हूँ तो तुम भड़वे उसका भी हफ़्ता लेते हो- मैं बराबर तुझे रुपये देती हूँ फिर भी तू मेरी इज़्ज़त पर हाथ डालता है साले हमें तो ऊपर वाले ने ही किसी काम का बना के नहीं भेजा, न अगले का न पिछले का।[13]। रमा, सोनम का साथ देते हुए इस बात पर हवलदार से सवाल करती है तो वह कहता है कि- "आप किसकी बातों में आती हैं.... ये हिजड़े महाचोर लुच्चे हैं।....... मैंने तो लूट का माल वापिस लिया है और दो चार बेल्ट जमायी है, लातों के भूत बातों से नहीं मानते। इन हिजड़ों की कोई इज्जत नहीं होती।"[14] यहाँ पर हवलदार जो कुछ भी सोनल के लिए बोल रहा है उसकी जो घटिया सोच है, वही घटिया मानसिकता आज भी समाज में मौजूद है। किन्नर को लेकर समाज की जो घटिया सोच है उसीको लेखिका ने हवलदार के ज़रिए सामने लाया है। किन्नर तो अपने पेट पालने के लिए भीख माँगने के लिए मजबूर हैं। उससे भी इस समाज को आपत्ती है। जो समाज उनका परवाह नहीं करता,

उनकी मदत नहीं करता लेकिन उनको दबोचने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ता। बेरोज़गारी ही उन्हें इस दलदल में फँसाता है।

सोनल तो इस घटना के बाद कहीं गायब हो गई थी और अचानक एक दिन फिर से रूपाली नामक एक लड़की के साथ रमा के सामने प्रत्यक्ष होती है। वहाँ पर हुई बातचीत से ही रमा लल्लन नामक किन्नर गुरु के बारे में जान लेती है जो सोनल की गुरु माँ थी "हिजड़ों की गुरु माँ औरतें नहीं हिजड़ा ही होती है। औरतें तो उन्हें जनम से ही घर से बाहर निकाल देती हैं। मैं पटना वाली लल्लन गुरु माँ की बेटी हूँ। वहीं से मसूदपुर वाली गुरु माँ मुझे दिल्ली लायी थी खरीदकर।"[15] यहाँ पर लेखिका ने किन्नर समाज के गुरु माँ संप्रदाय से पाठकों को परिचित कराने की कोशिश करती है। जब सोनल ने खरीदने वाली बात कहती है तो रमा उसे छिड़ाने लगती है कि- "खरीदकर माने, क्या हिजड़े भी खरीदे बेचे जाते हैं। तुम लोग कौन सी हूर की परियाँ हो।"[16] इसपर सोनल ने अपना जवाब देती है कि- "जब हिजड़ा खुद पैदा नहीं कर सकते तो एक दूसरे के घरों से खरीद लेते हैं दूसरा हिजड़ा, लेकिन पूरी इज्जत के साथ। हमें तो ऐसा ही लगता है जैसे माँ के बाद मौसी के घर आ गए हो।"[17] यहाँ पर हमें यह देखने को मिलते हैं कि किन्नर के अंदर ही अंदर एक माँ की भावनाएँ एवं संवेदनाएँ निहित हैं जो ये लोग गुरु के रूप में निभाते हैं।

रमा लल्लन की कहानी डॉक्युमेंट्री बनाने के लिए लल्लन के पास पटना चली जाती है। इसके लिए वहाँ के खोजी पत्रकार विकास की सहायता भी लेती है। रमा जानना चाहती थी कि लल्लन को स्कूल खोलने का आग्रह कहाँ से मिला। तभी तो लल्लन बताती है कि उसे भी पढ़ाई करने का बहुत शोक था। लेकिन उसकी गुरु माँ मना कर दिया था। क्योंकि एक किन्नर को स्कूल में जाकर पढ़ाई करना मुश्किल था। लल्लन स्कूल खोला तो उसकी मदत के लिए बालू नामक मास्टर और किन्नर काली भी उसका साथ देते हैं। बस्ती के बच्चों के अलावा दूर दूर से भी बच्चे पढ़ने आते थे। उन्हें स्कूल आने जाने के लिए लल्लन ने फ्री में रिक्शा और कार का भी बंदोबस्त की थी। स्कूल इतने अच्छे से चल रहा था कि भू-माफिया वालों की आँखों में खटकने लगा। और एक दिन रातों रात स्कूल को जला कर उसका नामोनिशान मिटा दी गई। एक किन्नर होने के बावजूद लल्लन अपने दम पर बच्चों के लिए स्कूल खोला था उसे तहस नहस कर दिया गया। क्यों? क्योंकि वह एक किन्नर द्वारा चलाया जा रहा था। यहाँ पर समाज के कुछ तुच्छ लोगों के संवेदनाहीन प्रवृत्ति को उजागर कर दिया गया है। ये ऐसे लोग हैं जो खुद कुछ करते नहीं और दूसरों को खासकर किन्नरों को कुछ करने भी नहीं देते है। दूसरी बार फिर से स्कूल खोला तो माफिया जरूमद खान ने गुंडों को भेजकर स्कूल को बुलडोसर के ज़रिए ठुकड़े ठुकड़े कर दिया। लल्लन को मार कर अधमरा भी कर दिया। जिन बच्चों की दुनिया स्वर्ग बनाने लगी तो इसका नतीजा यह हुआ कि उन्हें बदले में नरक मिला। उसके साथ साथ उसके ख्वाब के भी जड़ उखाड़कर फेंक दिया गया। चाहे समाज किन्नर को ठुकराए पर किन्नर समाज को ठुकराते नहीं, इसका उदाहरण है लल्लन मिस। लल्लन एक ऐसा पात्र है जो किन्नर समाज को जलती हुई मशाल की तरह जीवन में आगे जाने की राह दिखाती है। लेकिन साथ यह भी साबित कर देती है कि आगे जाने में केवल ख्वाब मात्र नहीं समाज का सहयोग भी चाहिए जो लल्लन को नहीं मिला। समाज से वह आग्रह करती दिखाई देती है कि हमें भी कुछ कर पाने की काबिल समझिए। हमसे हमारा मानवाधिकार मत छीनिए।

नाटक की भाषा और शैली को लेकर डॉ आनंद कश्यप का मानना है- "नाटक में श्रव्य काव्य से अधिक रमणीयता आ जाती है। नाटक की भाषा शैली सरल सुबोध स्पष्ट होनी चाहिए, जिससे नाटक अपना प्रभाव स्थापित कर सके, दर्शकों को बौद्धिक श्रम न करना पड़े। श्री भरत वेद इसपर खरे उतरे हैं। वे नाट्य विधा के कुशल नाटककार हैं। उन्होंने नाट्य तत्वों और शैली का प्रतिपादन जिस तरह नाटक शिखंडी में किया है, वह अद्‌भुत है, अद्वितीय है।"[18] तीनों नाटकों की भाषा सहज एवं सरल है तथा पात्र, चरित्र, वातावरण व देशकाल के अनुकूल पारिभाषिक और विदेशी विशेषकर अंग्रेजी और अरबी के प्रचलित शब्द प्रयुक्त हैं। 'आँख सेंकना' जैसे मुहावरों के साथ अनेकानेक लोकोक्तियों का प्रयोग भी हैं यथा- इनकी माँ को घोडा काटे, इनकी मर्दानगी का लंगर उठ नहीं जाएगा जो किन्नरों की मौलिकता और मानसिकता को दर्शाते हैं। किन्नरों के कुछ पारिभाषिक

शब्द प्रयोग भी महत्वपूर्ण है जैसे- मुए, हलकट, मेमने, लड्डू, मटक मल्लू, करमजलों, छेड़ा-छेड़ी, बेलचों आदि।

उपसंहारः निष्कर्षतः तीनों नाटक किन्नर समाज पर होनेवाले सामाजिक एवं राजनीतिक शोषण का खुलासा किए हैं। 'हरारत' मानवीयता पर ज़ोर देता है जो सभ्य समाज से किन्नरों के लिए उम्मीद न किया जा सकता। 'शिखंडी' राजनीतिज्ञों की कथनी और करनी का फर्क तो बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत किया है। 'लल्लन मिस' नाटक लल्लन के ज़रिए किन्नर समाज के मानवीय सोच और सभ्य समाज के अमानवीय सोच का पर्दाफाश करने में पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। तीनों नाटक किन्नर समाज का यथार्थ चित्रण, उनकी संवेदनाएँ, उनपर राजनीतिज्ञों का दोहरा बर्ताव, समाज की अमानवीय चेहरा आदि का विस्तृत वर्णन किया है। तीनों नाटक यह सोचने के लिए बाध्य करते हैं कि किन्नर हमेशा से हास्य एवं शोषण का मात्र पात्र क्यों बन गए हैं? साथ ही किन्नर समाज को मुख्यधारा समाज के साथ समानता का दर्ज़ा दिलाने में ये तीनों नाटकों ने अहम भूमिका निभाई हैं। तीनों लेखकों ने किन्नर समुदाय के अनेक पहलुओं से पाठकों को रू-ब-रू कराते हैं। साथ ही साथ समाज को इस दिशा कि ओर अग्रसर करते है कि किन्नर समाज मानवीयता, सम्मान, शिक्षा, आरक्षण, प्रगति मार्ग और सहारा आदि का हकदार है और जिनके ये अधिकारी भी हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. धीरेन्द्र वर्मा(सं), हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृ-316
2. भरत वेद, शिखण्डी, बुक्स क्लिनिक पब्लिशिंग, 2022, पृ-8
3. वही, पृ-7
4. वही, पृ-7
5. वही, पृ-8
6. वही, पृ-9-10
7. वही, पृ-11
8. वही, पृ-27
9. वही, पृ-39
10. वही, पृ-39
11. सं.डॉ एम फ़िरोज़ अहम्मद, वाडमय हिन्दी पत्रिका, पृ-177
12. वही, पृ-180
13. रमा पाण्डेय, लल्लन मिस, वाणी प्रकाशन, 2021, पृ-34
14. वही, पृ-35
15. वही, पृ-42
16. वही, पृ-42
17. वही, पृ-43
18. भरत वेद, शिखण्डी, बुक्स क्लिनिक पब्लिशिंग, 2022, पृ-4

शोधार्थी, हिन्दी विभाग

महाराजास कॉलेज एर्णाकुलम , केरल-682011

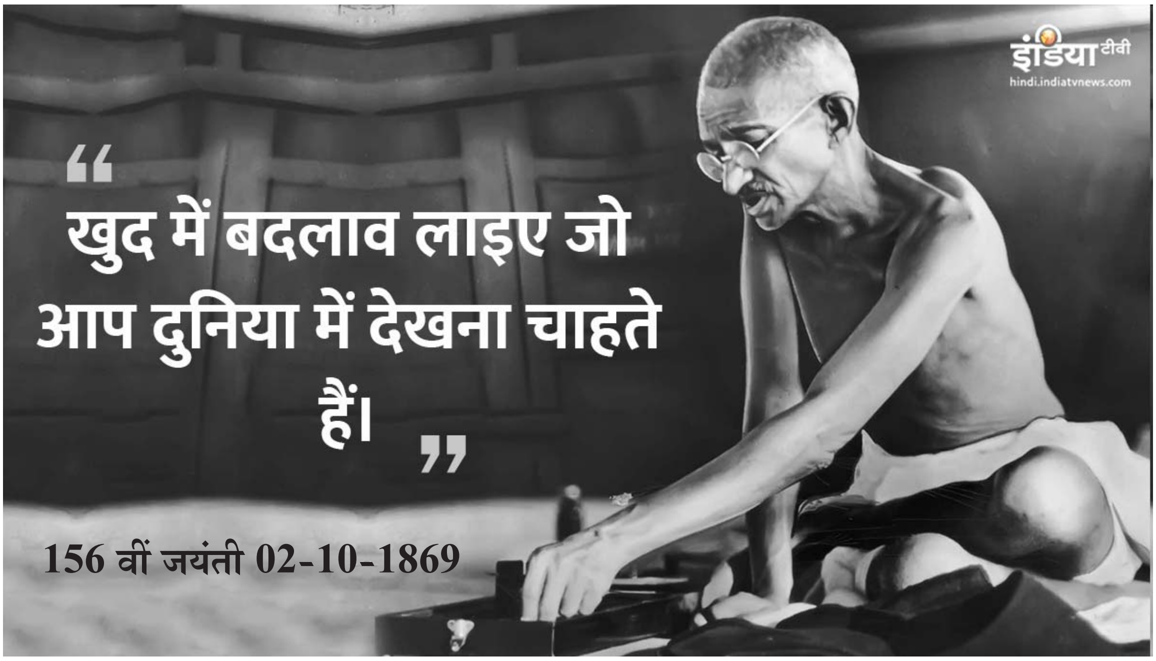

पर्यावरण विमर्श और समकालीन हिंदी एवं भारतीय नेपाली कविता (विशेष संदर्भ नरेश सक्सेना और मनप्रसाद सुब्बा की कविताएँ)

सबनम भुजेल

वर्तमान समय की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि पर्यावरण को कैसे सुरक्षित एवं संरक्षित रखे? यह प्रमुख चिंता एवं विमर्श का विषय है जो केवल व्यक्ति विशेष से संबद्ध नहीं रखता, बल्कि पूरी सृष्टि इसमें शामिल होती हैं। पर्यावरण कहने से केवल एक देश या एक व्यक्ति नहीं आता अपितु इस पृथ्वी में मौजूद बच्चे-बूढ़े, दमित, शोषित स्त्री, हाशिये का समाज, पशु-पक्षी, वन-जंगल सभी आते हैं। पारिस्थितिक पर्यावरण हो या पारिस्थितिक पर्यटनवाद हो, सबकी समस्या पर्यावरण की समस्या हैं। पिछले कई दशकों से पर्यावरण में परिवर्तन के कारण पृथ्वी पर समस्याओं का रूप उग्र होता चला जा रहा है, जिसकी सीमा का अनुमान शायद वैज्ञानिकों को भी नहीं। देश-देश का आपसी मन-मुटाव प्रकृति और पर्यावरण को भीतरी सतह तक तहस-नहस करने पर तुली हुई है। एक ओर परमाणु संकट की आपाधापी से प्राकृतिक संसाधन खत्म होती चली जा रही है वही दूसरी ओर पृथ्वी में वायुमंडलीय गैसों का अशुद्धीकरण हो रहा है ऐसे में न केवल मनुष्य को आहत पहुँच रही हैं बल्कि पृथ्वी में पाई जाने वाले समस्त पर्यावरण का हिस्सा ही इसमें उद्वेलित हो रही हैं। साहित्य पर्यावरण की चिंता को व्यक्तिविशेष की चिंता से परे रखकर उसे समग्रता में देखने का पक्षपाती है। 'पर्यावरण और समकालीन हिन्दी साहित्य' पुस्तक में इस बात का जिक्र मिलता है कि "यह प्रकृति सिर्फ मानव के उपयोग के लिए नहीं है, समस्त जैव-अजैव वस्तुओं का इस प्रकृति में विशिष्ट स्थान हैं।" (इल्लत, 2019) इस दृष्टि से पर्यावरण को बचाने का मतलब केवल पेड़, पौधों, नदी, तालाबों, हवा के अशुद्धीकरण से बचाव नहीं है इसका मतलब स्त्री, बच्चे, समाज के समस्त तबके जो उपेक्षित,पीड़ित, हाशिये पर पड़े हैं उन सबको बचाने की चिंता का केंद्र भी पर्यावरण विमर्श के अंतर्गत आता है।

उनके बदलते रूप को गहराई से देखना, पृथ्वी की चिंता के साथ-साथ अगली पीढ़ी के बचे रहने की चिंता भी है जिसपर गौर करना आवश्यक है। अतः समकालीन हिंदी के नरेश सक्सेना एवं भारतीय नेपाली कविता के मनप्रसाद सुब्बा की कविताओं को केंद्र में रखकर पर्यावरण विमर्श को उजागर करने का इस आलेख का मुख्य उद्देश्य रहा है।

समकालीन हिंदी एवं भारतीय नेपाली कविता के जाने माने हस्ताक्षरों में कवि नरेश सक्सेना और मनप्रसाद सुब्बा का विशेष स्थान रहा है। कविता के क्षेत्र में एवं कविता को नई मुक्ति दिलाने हेतु दोनों कवियों की रचनाएँ नए धरातल कायम करती हैं। नरेश सक्सेना एवं मनप्रसाद सुब्बा की कविताएँ प्रकृति के प्रति प्रगतिशील बोध को लिए हुए आगे आती हैं। दोनों कवियों ने विज्ञान और तकनीकी का ऐसा प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है जिससे कविता में नयापन दिखाई देता है। समकालीन कवि के संदर्भ में वैभव सिंह लिखते हैं, "प्रकृति से अलगाव का दर्द उनकी कविताओं में जिस तरह उभरा है, वह प्रकृति पर लिखी गई दूसरी ढेरों कविताओं की तुलना में अधिक प्रामाणिक और सच्चा प्रतीत होता है।"(सिंह, 2014)

नरेश सक्सेना और मनप्रसाद सुब्बा ने अपनी कविताओं के माध्यम से लोगों के हृदय में प्रकृति चेतना जगाने की कोशिश की है लेकिन प्रकृति की पीड़ा केवल प्रकृति ही जान सकती है। जब यह पृथ्वी पीड़ा में होती है तो उसकी पीड़ा कवि को सुनाई पड़ती है और कवि अपनी कविताओं में उसे दर्ज करने की कोशिश करते हैं उसी तरह जिस तरह समकालीन नेपाली कवि मनप्रसाद सुब्बा ने अपनी कविता 'धरती-1' में किया है। वे लिखते हैं,

"धरतीले धेरै दुख भोग्नुपरेको छ/ बिचरा ती हिंड्ने पहाडहरू / जसको कुनै खास नामै छैन/ क्षितिजसम्म फैलिंदै गएको मधेश-फाँटभन्दा बढी/ दिनभरिको मजदूरीपछि पाएको/ सुक्खा रोटीको फैलावटमा/ यो धरती एकोहोरो घुमिरहेको हुन्छ/ गाडीको चक्काहरू ले फन्फनी लपेट्दै/ धरतीलाई कहाँ कहाँ पुर्याउँछ, थाह छैन" (सुब्बा, भुइँफुट्टा शब्दहरू, 2013) धरती जिस तरह से पीड़ित है उससे सचमें पूरी पृथ्वी शोक से गुजरती है और मनुष्य जो धरती को महज एक स्वार्थ की वस्तु मानता है उसको यह समझना चाहिए "जिसकी नहीं कोई जमीन/ उसका नहीं कोई आसमान" (सक्सेना, सुनो चारु शिला, 2013) ये काव्य पंक्तियाँ कवि नरेश सक्सेना की हैं जिन्होंने प्रकृति चिंता के साथ-साथ भविष्य संकट की ओर इशारा भी किया हैं।

पृथ्वी में पर्यावरण संरक्षण को बनाए रखने के लिए 1968 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने पर्यावरण समस्या का समाधान हेतु एक प्रस्ताव जारी किया था जिसके अंतर्गत स्वीडेन के स्कोटहोम में 1972 को एक पर्यावरण शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसका उद्देश्य पिछले कई वर्षों से हो रहे प्रकृति पर अनगिनत प्रभावों से पर्यावरण में फैले प्रदूषण को रोकना था जिसके लिए कई राष्ट्रों में पर्यावराण सुरक्षा संबंधी कानून बनाए गए। इसके बावजूद भी 1970 के दशक के आसपास प्रकृति को कई विध्वंशजनक स्थिति का सामना पड़ा फलस्वरूप 1992 में भी 'भौम शिखर सम्मेलन' गठित हुआ जिसमें भी इस पृथ्वी पर पर्यावरण पर हो रहे विध्वंश को रोकने के लिए कई नियम-कानून बनाए गए। इतने नियम-कानून बनने पर भी पर्यावरण दूषित है। दिन-ब-दिन प्रकृति विनाश की ओर जा रही है जिसका एक मात्र कारण 'विकास के नाम पर विनाश' रहा है जोकि प्रकृति के बिल्कुल कार्य करती है। डॉ. प्रभाकरन हेब्बार लिखते हैं, "प्रकृति रत्नगर्भा है। प्रकृति के विभिन्न संसाधनों का उपयोग कर समस्त जीवराशि अपना जीवन आगे बढ़ाती है। इस जगत की परमाणु से लेकर सब वस्तुएं आपस में सुसंबंधित हैं। एक शृंखला की कड़ियों की भाँति सब इस चक्रीय गति से आबद्ध हैं। प्रकृति के ये मज़बूत संबंध मानव के विभिन्न कार्य-कलापों के जरिये बिगड़ जाता हैं, इसका कारण भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने की लोभवृत्ति है।.......औद्योगिकीकरण के बढ़ने से, प्राकृतिक संसाधनों के वैविध्य का सत्यानाश हो रहा है। पेट्रोल, डीजल इत्यादि के जलन से कार्बन की मात्रा अन्तरिक्ष में बढ़ रही है। बाँध की वजह से विस्तृत भू-भाग की मृदा, जैव-वैविध्य सदा-सदा के लिए दूर हो जाते हैं तथा इसका प्रभाव भूमि के उपरी ताल पर भी पड़ता है। समुद्र के प्रदूषण से समुद्र की सारी संपत्ति एमआईटी जाएगी। इससे मानव के सामने महासंकट अवश्य उपस्थित हो जाएगा, क्योंकि समुद्र के बड़ा पारिस्थितिक तंत्र है।" (हेब्बार, 2019) यह कथन इस बात की पुष्टि करता है कि मानव जिसे विकास का नाम देकर प्रकृति पर प्राहार कर रहा है एवं पर्यावरण को दूषित कर रहा है उससे केवल विनाश ही संभव है। विकास और विनाश एक साथ कभी नहीं चल सकते लेकिन विकास न हो तो मानव सभ्यता उस स्थिति में फिर से चला जाएगा जिसे आदिम युग कहा गया है। इसलिए समकालीन हिंदी एवं भारतीय नेपाली कविता के माध्यम से यह प्रयास किया गया कि प्रकृति और पर्यावरण की हो रही क्षति को कम-से-कम रोका जाए और पर्यावरण चेतना को जन-जन तक पहुंचाया जाए।

कवि नरेश सक्सेना और मनप्रसाद सुब्बा ने अपनी रचनाओं में प्रकृति के माध्यम से जीवन मूल्य और मानवीय संवेदना को दर्शाने का प्रयास भी किया हैं। उनके यहाँ प्रकृति अनगिनत प्रश्नों के साथ पेश होती हैं साथ ही प्रकृति के प्रति मानवीय हस्ताक्षर का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत करते हैं। यूं तो पृथ्वी का हर एक प्राणी प्रकृति से जुड़ा हुआ है। मनुष्य, जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े सभी प्रकृति पर ही निर्भर हैं लेकिन फिर भी मनुष्य प्रकृति का दोहन करता है। नदी-नाले, पहाड़-पर्वत, पेड़-पौधे, जंगल, जीव-जन्तु आदि को नष्ट कर उसका व्यापार करते हैं। जिन वृक्ष की डालियों से घर बनाया जाता है, बच्चों का झूला तैयार

किया जाता है, चिड़ियों की चहक सुनाई जाती है, आज उसे ही काटकर मनुष्य पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। जंगलों को काटकर बड़े-बड़े कल-कारखाने बनाए जा रहे हैं, जिससे वायु, मिट्टी एवं प्रकृति से जुड़ी सारी चीजें प्रदूषित हो रही हैं। इसलिए कवि चिंतित है आने वाले कल को लेकर। इसलिए वे भविष्य की ओर इशारा करते हुए लिखते हैं, "नक्शे में जंगल हैं पेड़ नहीं/ नक्शे में नदियां हैं पानी नहीं/ नक्शे में पहाड़ हैं पत्थर नहीं/ नक्शे में देश हैं लोग नहीं/ समझ ही गए होंगे आप कि हम सब/ एक ही नक्शे में रहते हैं" (सक्सेना, समुद्र पर हो रही है बारिश, 2001) यही भाव कवि मनप्रसाद सुब्बा भी व्यक्त करते हैं और लिखते हैं, "पानी पर्नभन्दा बेसी/ पसीना झर्दैछ/ पानी त पर्छ अचेल/ तर प्रपोगाण्डा जस्तो/ अर्थात् टि वी सिरियल को बीच-बीचमा विज्ञापन जस्तो (सुब्बा, ऋतु क्यान्भसमा रेखाहरू , 2001) अर्थात बारिश में कमी हो रही है क्योंकि उससे ज्यादा तो लोगों के शरीर से पसीने गिरते हैं। यानि कि बारिश तो होती है लेकिन प्रपोगांडा की तरह अर्थात उसी तरह जिस तरह टी. वी. सिरियल के बीच-बीच में विज्ञापन आते हैं। हम सभी जानते हैं कि पृथ्वी में 71% पानी है उसमें से 97% पानी महासागर में हैं और 3% मात्र पीने योग्य पानी है। अभी पीने योग्य पानी इसलिए कम हो रहा है क्योंकि प्रकृति पर मनुष्य ने अपना हस्तक्षेप कर लिया है। जहां से साफ पानी आती हैं उसका स्रोत भी प्रदूषित हो गई है। आज वर्तमान समय में जो कुछ प्रकृति संबंधी घटनाएँ घटित हो रही है उसका एकमात्र कारण मनुष्य का प्रकृति पर हस्तक्षेप रहा है। मनुष्य प्रकृति को एक वस्तु के रूप में देखता है। वह जब भी प्रकृति पर हमला करता है तो वह अपने फ़ायदे के बारे में ही सोचता है। अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का घर उजाड़ता है जिसका दुष्परिणाम फिर स्वयं मनुष्य को ही उठाना पड़ता है। इसलिए तो आज मनुष्य भयानक महामारी, बाढ़, वायरस, बीमारी आदि का शिकार हो रहा है। यह प्रकृति के प्रति उसके स्वार्थ मनोवृत्ति का परिणाम है। कवि इसलिए अपनी कविताओं के माध्यम से प्रकृति को नष्ट करने वालों का विरोध कर प्रकृति चिंतक के रूप में भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रकृति चेतना से ओत-प्रोत ऐसी कई कविताएँ कवि नरेश सक्सेना के यहाँ दिखाई देती हैं। जिस तरह आज हमारे परिवेश में पेड़ काटे जा रहे है, नदियों को बिजली उत्पादन का संसाधन के रूप में मात्र इस्तेमाल किया जा रहा है ऐसे में एक कवि की चिंता यहाँ दिखाई दे रही हैं कि आने वाले दिनों में हम अपनी प्रकृति को खो देंगे। अपना अस्तित्त्व खो देंगे, क्योंकि हम सभी अब मशीनी दुनिया में प्रवेश कर चुके हैं। इस तरह की व्यथा समकालीन भारतीय नेपाली कवि मनप्रसाद सुब्बा की कविता 'जङ्गलको कुरा' में आई है। वे लिखते हैं, "तिमी बोल्छौ मशिनको भाषा/ त्यसैले यो जङ्गललाई तिमी/ ठीक बुझ्न सकिराखेको छैनौ/ भाषा/.....रु खहरूको सासमा कसको ढुकढुकीको सुगन्ध छ" (सुब्बा, भुइँफुट्टा शब्दहरू , 2013) अर्थात विकास के नाम पर जिस तरह से प्रकृति का दोहन हो रहा है उसकी झलक समकालीन कविता में दिखाई देती है। अगर इसी तरह यह परिवेश रहा तो इस सृष्टि में मानव सभ्यता मिट जाएगी और जो कुछ भी बचा रहेगा उसे कवि नरेश सक्सेना कविता के माध्यम से अभिव्यक्ति देते हुए लिखते हैं, "देखना जो ऐसा ही रहा तो, एक दिन/ पेड़ नहीं होंगे/ घोंसले नहीं होंगे/ चिड़ियाँ जरूर होंगी, लेकिन पिंजरों में/ नदियाँ नहीं होंगी/ ....जंगल नहीं होंगे.../बस्तियाँ नहीं होंगी/ मनुष्य नहीं होंगे/ सिर्फ बाजार होंगे, जहां होंगी कविताएँ/ पेड़ों, नदियों, चिड़ियों, मछलियों और खरगोशों का/ विज्ञापन करती हुई" (सक्सेना, सुनो चारुशिला, 2013) इससे ज्यादा भयानक और क्या हो सकता है।

निष्कर्ष रूप में देखा जाए तो पर्यावरण से जुड़ी समस्या केवल वर्तमान समस्या नहीं है बल्कि प्रकृति तो सदैव से मानव समुदाय से जुड़ी हुई है। पर्यावरण के अंतर्गत भौतिक तत्व है और दूसरा सामाजिक एवं सांस्कृतिक तत्व भी। वर्तमान स्वरूप में देखा जाए तो मनुष्य और प्रकृति के बीच सांस्कृतिक संबंध है जिसमें प्रकृति से संबन्धित सभी संसाधनों, जीवन मूल्यों, पुजा-अनुष्ठानों, में वह प्रकृति के

प्रति बड़ी सजगता के साथ पेश आती है यदि मनुष्य के जीवन में प्रकृति के प्रति उनका हृदय चेतनामय बनाना हो तो मनुष्य को अपनी संस्कृति द्वारा उसमें परिवर्तन लाया जा सकता हैं। क्योंकि पर्यावरण विमर्श की मांग मनुष्य का प्रकृति के प्रति अतिक्रमण से ही उत्पन्न हुआ है और यह अलगाव तो स्वयं मनुष्य ने किया है, जिसकी चेतना आज उभर कर साहित्य में आई है और साहित्य जन-जन तक प्रकृति चेतना भरने का कार्य कर रही है क्योंकि जब मनुष्य का हृदय प्रकृति के प्रति सचेतता दिखाएगी तभी वह पर्यावरण विनाश को कम करने के लिए तत्पर होगा और उसके लिए सबसे पहले मनुष्य को अपना हृदय प्रकृतिमय बनाना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ

https://indiankanoon.org/doc/871328/. (दि.न.). Indiankanoon.org : https://indiankanoon.org/doc/871328/ से पुनर्प्राप्त

आचार्य लोकेन्द्र. (दि.न.). प्रकृति (Prakriti). www.raksharthamvedanam.in: https://www.raksharthamvedanam.in/prakriti से पुनर्प्राप्त

डॉ. पी.एन.राजेश कुमार, (2016), अरुण कमल की कविताओं में पर्यावरण विमर्श, डॉ. ए. एस.सुमेष समकालीन हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श (पृ. 78), कानपुरः अमन प्रकाशन।

डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, (2019), पर्यावरण और समकालीन हिंदी साहित्य, नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन।

डॉ. प्रभाकरन हेब्बार, (2019), पर्यावरण और समकालीन हिंदी साहित्य, नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन,

नगेंद्रनाथ बसु (सं.), (1986), हिंदी विश्वकोश, दिल्ली।

नरेश सक्सेना, (2014), कवि ने कहा, नई दिल्लीः किताबघर प्रकाशन।

नरेश सक्सेना, (2001), समुद्र पर हो रही है बारिश. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन।

नरेश सक्सेना, (2013), सुनो चारुशिला, नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ।

नरेश सक्सेना, (2013), सुनो चारुशिला, नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ।

मनप्रसाद सुब्बा, (2001), ॠतु क्यान्भसमा रेखाहरू, गान्तोकः जनपक्ष प्रकाशन।

मनप्रसाद सुब्बा, (2013), भुइँफुट्टा शब्दहरू , काठमांडौंः साङ्ग्रिला पुस्तक प्रा.लि.।

मनप्रसाद सुब्बा, (2013), भुइँफुट्टा शब्दहरू , काठमाण्डौः साङग्रिला पुस्तक प्रा.लि.।

राजेश श्रीवास्तव, (2020), सजग महाचिति की व्यथा, दत्ता (संपा) कोल्हारे में, हिंदी साहित्य में पर्यावरणीय संवेदना (पृ. 18), नई दिल्ली : सामयिक पेपरबैक्स।

वैभव सिंह, (2014), कविताओं की गुनगुनाती पतली नदी, (डॉ. अनीता श्रीवास्तव, सं.) रेवान्त ,

श्याम मनोहर व्यास, (जुलाई, 2008)। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संस्कृति, मधुमति पत्रिका,

संजय राठोड, (2020)। हिंदी कविताओं में पर्यावरण, दत्ता (संपा) कोल्हारे में, हिंदी कविताओं में पर्यावरणीय संवेदना (पृ. 21), नई दिल्ली : सामयिक पेपरबैक्स।

शोधार्थी, हिंदी विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक, सिक्किम, मोबाइल -8945838846

सृजन स्मरण

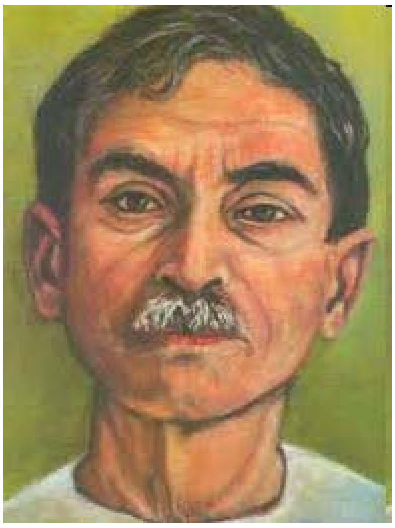

प्रेमचंद

(31-07-1880 - 08-10-1936)

स्वाधीनता संग्राम में हिंदी साहित्यकारों का योगदान

डॉ के भार्गवन

स्वाधीनता संग्राम में हिन्दी साहित्यकारों का रचनात्मक और सृजनात्मक महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जबकि वह काल भारत देश के नित नये संकट आक्रमण, दमन, पराधीनता आदि कुरीतियों से जूझते एवं संघर्ष करते हुए ज्यादा खोजने का रहा है। उस विषम और विपरीत परिस्थितियों में भी हिन्दी साहित्यकारों ने अपना पुनीत दायित्व निर्वहण करते हुए राष्ट्र सेवा, राष्ट्र चिंतन एवं राष्ट्र प्रेम का परिचय दिया। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से संबन्धित साहित्यकारों ने अलख जगाया, जनजागरण किया एवं अपनी प्रतिभा के बल पर अपना राष्ट्रधर्म सिद्ध किया।

हिन्दी साहित्यकारों की स्वाधीनता संग्राम में एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

स्वाधीनता के अमृत महोत्सव के अवसर पर स्वाधीनता-संग्राम में हिन्दी साहित्यकारों के योगदान को रेखांकित करना साहित्यिक दायित्व एवं रचनाधर्मिता का कर्म बन जाता है। स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी साहित्यकारों का रचनात्मक और सृजनात्मक योगदान सदैव ही केन्द्रीय और मौलिक विषय रहा है। वास्तव में यदि देखा जाय तो नवीं-दसवीं शताब्दी में हिन्दी के आदिकाल से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक लगभग पूरी समयावधि ही हमारे देश के लिए तनाव, संकट, आक्रमण, दमन, पराधीनता आदि की तथा उससे संघर्ष करने एवं उसके समाधान खोजने की रही है। इस लम्बी अवधि में भी चुनौतियाँ लगातार बनी रहीं तथा उनकी झलक हमारे जीवन, चिंतन, साहित्य एवं कलात्मक प्रयासों में देखने को मिली है।

1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के साथ ही देश में राष्ट्रीयता की भावना जागरित हो उठी। ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन जैसी संस्थाओं ने राष्ट्रीय चेतना मुखरित करने की कोशिश की। राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, श्रीमती एनी बेसेन्ट आदि राष्ट्र के स्वाभिमान की रक्षा हेतु उठ खड़े हुए। न केवल हिन्दी-साहित्य बल्कि समग्र भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना का सूत्रपात हो रहा था। हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने राष्ट्रीयता के माध्यम से देश में नवजागरण का अलख जगाए।

भारतीय राष्ट्रीय चेतना का सर्वाधिक प्रखर रूप हम राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की कृति 'भारत भारती' में देखते हैं। राष्ट्रीय अस्मिता की खोज करते हुए गुप्त जी ने लिखा है- 'ठहम कौन थे क्या हो गए है, और क्या होंगे अभी। /आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।"[1]

सन् 1850 से देश को स्वतंत्रता प्राप्त होने तक हिन्दी साहित्यकारों तथा विशेषकर कवियों ने अनवरत रूप से स्वाधीनता प्राप्ति के संदर्भ में अपने उद्गार व्यक्त किए हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने राष्ट्रीयता के प्रति अपनी वेदना इन पंक्तियों में व्यक्त की है- "अँगरेज राज सुख-साज सजै सब भारी।/पै धन विदेश चलि जात रहै अति ख्वारी।/रोवहु सब मिलि के आबहु भारत-भाई।/हा ! हा ! भारत दुदर्शा न देखी जाए।।"[2]

वस्तुतः यथार्थ का सम्पूर्ण रहस्योद्घाटन साहित्य में नहीं होता। केवल उसकी अधिकाधिक रंग-छायाएँ क्रमशः प्रस्फुटित होती जाती हैं। इसमें संदेह नहीं कि पाश्चात्य औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध सौ वर्षों के भारतीय स्वाधीनता संग्राम की असंख्य छवियाँ हिन्दी साहित्य में उभरी हैं। उन्नसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारतीय नवजागरण से जुड़े समाज सुधार आन्दोलनों, प्रेस और पत्रकारिता के विकास, शिक्षा तथा दूरसंचार माध्यमों की क्रांति आदि का प्रभाव भी हिन्दी साहित्य में राज्यभक्ति और राष्ट्रभक्ति के मिले-जुले मनोभाव के रूप में दिखाई देता है। स्वाधीनता संग्राम में हिन्दी साहित्यकारों की भूमिका प्रभावशाली और प्रभावकारी सिद्ध हुई हैं। जातीय पहचान और जातीय स्वाभिमान का सरल और जटिल अक्स हिन्ही साहित्य में अवश्य उपलब्ध है। श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने भी राष्ट्रीयता के फलक पर काव्यांजलि दी है- 'बुंदेले हर बोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।/खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।/

रानी से भी अधिक हमें अब, यह समाधि है प्यारी।/यहाँ निहित है स्वतंत्रता की, आशा की चिनगारी।।"[3]

भारतमाता के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करने में छायावादी कवयित्री महादवी वर्मा भी अप्रतिम रही हैं। "भारत जननी, अम्ब ! तेरी विजय हैं,/गगन छू रहा हिम मुकुट शुभ्र, सुंदर,/रजत-स्वर्ण किरणें रही हों निछावर,/विविध रंग नभ के बने छात्र तेरा/अनिल चाँदनी का व्यंजन स्नेहमय है।"[4]

राष्ट्रीय चेतना मुखरित करना देश के स्वतंत्रता संग्राम के लिए अपरिहार्य थी। देश के स्वाधीनता संग्राम में संलग्न वीरों को प्रोत्साहित करने तथा वीर शहीदों को भावभीनी श्रद्धांजलि देने के लिए साहित्यकारों ने अपनी भावनाएँ व्यक्त की हैं। आत्मत्याग, आत्मोत्सर्ग एवं आत्मबलिदान का सुन्दर उदाहरण हिन्दी साहित्यकारों ने प्रस्तुत किए हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलन को तीव्र एवं तीक्ष्ण धार देते हुए सुव्यवस्थित लेखन किया और 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से लेखकों को राष्ट्रीय चेतना मुखरित करने हेतु प्रेरित किया, प्रोत्साहित किया तथा सरस्वती में स्थान दिया। उन्होंने अपने युग के कवियों और साहित्यकारों का एक ऐसा सक्षम और सशक्त वर्ग खड़ा कर दिया जो राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति समर्पित था। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी विशिष्ट कृतियों द्वारा राष्ट्रीयता का स्वर निनादित किया। वास्तव में जागरण जीवन की अमोघ औषधि है।

अनेक साहित्यकारों और कवियों ने स्वतंत्रता संग्राम पर अपनी लेखनी मुखर की है। सभी के नामों का उल्लेख करना आलेख के कलेवर को अनावश्यक विस्तार देना है। इसलिए कुछेक नामों का उल्लेख किया गया है, उनमें श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा शंकर, लाला भगवानदीन, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', राम नरेश त्रिपाठी, पंत, प्रसाद आदि हैं। पं. रामनरेश त्रिपाठी की राष्ट्रीय अभिव्यंजना प्रस्तुत पंक्तियों में दृष्टिगोचर हुई है- "तुम तो हो प्रिय बंधु स्वर्ग सी,/सुखद सकल विभवों की आकर।/धरा शिरोमणि मातृभूमि में,/धन्य हुए हो जीवन पाकर"[5]
सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की 'जन्मभूमि' कविता का प्रकाशन सन् 1920 में हुआ था जिसमें भारतीय राष्ट्रीयता का उद्घोष किया गया है। भारत भूमि को जग-महारानी के रूप में संबोधित करने वाली पंक्तियाँ उसका साक्ष्य हैं। इसी कविता को निराला जी ने सन् 1928 में 'भारतीवंदना' शीर्षक से संशोधित कर लिखा था तथा इसी क्रम में उनकी प्रतिनिधि रचना 'जागो फिर एक बार' भी प्रकाशित हुई है जिसमें कहा गया कि 'पुरा यह विश्वभर जागो फिर एक बार'।

हिन्दी के साहित्यकारों और कवियों को पूर्वाभास हो गया था कि भारतीय स्वतंत्रता अब दूर नहीं है। वही कारण था कि जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों, कहानियों और कविताओं के माध्यम से राष्ट्रवादी स्वर ध्वनित किया तथा आह्वान गीत के माध्यम से जन जागरण को नया धार दिया। यह गीत जन सामान्य में ओजस्विता का भाव जगाने में सफल रहा जिसमें स्वतंत्रता का स्पष्ट उद्घोष है- "हिमाद्रि तुंग शृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती।/स्वयं प्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती।।/अमर्त्यवीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो।/प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो-बढ़े चलो।।"[6]

विदेशी पात्र कार्नेलिया से प्रसाद जी ने राष्ट्रीय प्रेम प्रचारित किया है। कहती है कि- "अरुण यह मधुमय देश हमारा।/जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।/सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरू शिखा मनोहर।/छिटका जीवन हरियाली पर, मंगल कुमकुम सारा।।"[7]

राष्ट्रीय चेतना जागरित करने में कवि श्याम लाल गुप्ता पार्षद भी अग्रणी रहे तथा भारतवासी तिरंगे को फहराते हुए प्रभातफेरी पर यही गीत गाते थे- "विजय विश्व तिरंग प्यारा, झंडा उँचा रहे हमारा।/सदा शक्तिबरसाने वाला, वीरों को हरसाने वाला।/शांति सुधा बरसाने वाला, वीरों को हरसाने वाला।/झंडा उँचा रहे हमारा।।" राष्ट्र प्रेम की मशाल जलाने वाले गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने तो यहाँ तक कह दिया कि जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है, वह नर नहीं नरपशु निरा और मृतक समान है। यही नहीं उन्होंने आगे भी यही लिखा है कि जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं, वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' मात्र विद्रोह करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि कविगण को सम्बोधित करते हुए उथल पुथल मचाने हेतु उनको सामूहिक रूप से आमंत्रित भी करते हैं। उनकी लोकप्रिय रचना इसका साक्ष्य प्रस्तुत करती है- "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए,/एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर

से आए,/प्राणों के लाने पड़ जाएँ, त्राहि-त्राहि रण-नभ मे छाए,/नाश और सत्यानाशों का धुँआ जग में छा जाए।।"[8]

'भारतीय आत्मा' के नाम से जाने जानते हैं कवि माखनलाल चतुर्वेदी। वे जीवन भर स्वाधीनता के लिए संघर्ष करते रहे, जेल यात्राएँ उन्होंने अनेक बार की थी तथा समग्र जीवन मातृभूमि की सेवा में उन्होंने समर्पित कर दिया था। ब्रिटिश शासन के प्रति आक्रोशी स्वर उनका विद्रोही स्वर बन गया है- "इसके बाद विदेशी शासन, हो चाहे जगदीश्वर का,/वह स्वराज्य कहला न सकेगा, हो अपना, अपने घर का।/अपने पैरों पर चल पड़ना है, असहयोग व्रत ठान लो,/हो जाओ आजाद, मर मिटो, दो दिन के मेहमान चलो।"[9]

सम्पूर्ण भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में कवियों और साहित्यकारों की भूमिका देशभक्ति, त्याग, बलिदान एवं आत्मसमर्पण की रही है। उनकी ओजस्वी एवं विद्रोह की व्यंजना से उर्जा प्राप्त कर सुप्त हृदयों में भी क्रांति की लहरें हिलोरें लेने लगती थीं। उस काल खण्ड में रचनाकारों ने मार्गदर्शक और प्रेरक की भूमिका निभाकर स्वतंत्रता पथ पर आगे बढ़ते असंख्य वीरों का मार्ग प्रशस्त किया तथा उन्हें राष्ट्रीय लक्ष्य देकर ध्येय प्राप्ति की ओर उन्मुख किया। राष्ट्रकवि दिनकर की राष्ट्रीयता वास्तव में भाववादी राष्ट्रीयता है। उसमें चिंतन की अपेक्षा आवेग और आवेश की प्रधानता है। परतंत्रता के वातावरण में अँग्रेजों के शोषण और अत्याचारों की प्रतिक्रिया का शक्तिशाली रूप दिनकर- काव्य में दिखाई पड़ता है जिसमें उत्साह है, उमंग है, प्रेरणा है और आस्था है। दिनकर की राष्ट्रीयता युद्ध काल की राष्ट्रीयता है जिसमें शक्तिऔर क्रांति की ध्वनि हुई है। दिनकर ने 'चक्रवाल' की भूमिका में स्वयं लिखा है कि 'राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी है, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया है। हुँकार के आमुख में उन्होंने कहा है- "वर्तमान की जय अभीत हो खुलकर मन की पीर बजे,/एक राग मेरा भी रण में, बंदी की जंजीर बजे।/नए प्रात के अरुण, तिमिर-उर में मरीचि-संधान करो,/युग के मूक शैल! उठ जागो, हुँकारो, कुछ गान करो।"[10]

दिनकर ने वर्तमान संघर्षों का मूल कारण राष्ट्रवाद को ही माना है। 'युद्धदेवता' की उक्ति साक्ष्य है-"है कहाँ विश्व मानव? जो हा केवल स्वदेश के प्राणी है।/मानवता नहीं, मातृभूमि की महिमा के सब अभिमानी हैं।/जब तक ये झंडे फहर हरे अभिमान नहीं यह सोता है,/देखें तो तब तक विश्व-मनुज का जन्म कहाँ से होता है।/मैं राष्ट्रवाद का सखा, कौन तोड़ेगा मेरा सम्मोहन।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी साहित्यकारों और विशेषकर हिन्दी कवियों का विशिष्ट अवदान रहा है। राष्ट्रीय चेतना को मुखरित करने वाला साहित्य इस कालावधि में सृजित हुआ क्योंकि बुद्धि विवेक द्वारा विरोधी सत्ताधारियों के साथ समझौता और सामंजस्य की कल्पना साहित्य सर्जक नहीं कर सकते थे। अनाचार, अत्याचार एवं अन्याय के उच्छेदन और उन्मूलन के अतिरिक्त उन साहित्यकारों के पास और कोई समाधान नहीं था। स्वाधीनता संग्राम के हिन्दी साहित्यकारों ने समसामयिक घटनाओं को मद्दे नज़र रखते हुए बुनियादी समस्याओं को राष्ट्रीयता के धरातल पर हल करने का सार्थक प्रयास किया है। प्रवृत्ति और निवृत्ति, बुद्धि और भावना, प्रेम और कठोरनीति, हिंसा और अहिंसा, आत्मबल और बाहुबल के बीच द्वन्द्वात्मक संघर्ष सदैव से चलता आ रहा है। स्वाधीनता संग्राम के साहित्यकारों के मानस में यह द्वन्दात्मक स्थिति भी बनी रही है फिर भी इन साहित्यकारों और विशेषकर कवियों ने युद्ध और शांति, व्यक्तिधर्म, कविधर्म एवं राष्ट्रधर्म, भाग्यवाद और कर्मवाद, विज्ञान और अध्यात्म, भोग एवं त्याग के आदर्श को अपनी रचनाओं में व्यंजित किया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. भारत भारती- मैथिलीशरण गुप्त
2. भारत दुर्दशा- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
3. झांसी की रानी- सुभद्राकुमारी चौहान
4. भारत जननी- महोदवी वर्मा
5. स्वदेश गोख- रामनरेश त्रिपाठी
6. हिमाद्रि तुंग श्रृंग से- जयशंकर प्रसाद
7. चन्द्रगुप्त- जयशंकर प्रसाद
8. कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ- बालकृष्ण शर्मा नवीन
9. चक्रवाक की भूमिका- दिनकर

10, हुँकार- दिनकर

असोसियेट प्रोफेसर
सरकारी आर्ट्स कॉलेज, कालिकट

दलित जीवन के प्रश्न और साहित्य

डॉ अमित कुमार जायसवाल

दलित साहित्य और दलितों के जीवन को समझने से भी पहले हमें दलित शब्द को समझना होगा कि इस दलित शब्द के मायने आखिर क्या हैं? दलित किसे कहा गया है? हजारों वर्षों से लगातार जिसका दलन तथा मर्दन किया गया है, जो अस्पृश्यता का शिकार हुआ है और जिनकी सामाजिक स्थिति तमाम सुधारों के बावजूद भी हेय बनी हुई है। यह दलितों का अभी तक का अतीत रहा है। वर्तमान में दलित वह है, जिसके साथ शारीरिक अस्पृश्यता भले ही कुछ कम हो गई है। परन्तु वर्ग-विशेष में मानसिक अस्पृश्यता का और भी ज्यादा जहर भर गया है क्योंकि निम्न श्रेणी के दलितों को अपने बराबरी में बैठा देख उच्च वर्ग बुरी तरह तिलमिला उठा है। समाज में समरसता दिखाने के लिए सवर्ण राजनेता भले ही दलित के घर भोजन पर आ जाएं परन्तु उनका खाना बाहर से ही आता है तथा जिसे सारा दिन जीतोड़ मेहनत करने के बाद भी रोटी से ज्यादा गालियाँ खाने को मिलती है, इस विडम्बनापूर्ण जीवन को भुगत रहा व्यक्तिही दलित है।

बीसवीं शताब्दी पूर्व के कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो दलितों का सामाजिक, राजनैतिक इतिहास बहुत कम देखने को मिलता है क्योंकि दलितों के योगदान को या तो दबा दिया गया है या उसे सवर्ण समाज का हिस्सा बना लिया गया। बावजूद इसके बीसवीं शताब्दी में डॉ भीमराव अम्बेडकर सबसे बड़े दलित चिन्तक के रूप में उभरकर सामने आए। जिन्होंने दलितों के शिक्षा और समानता पर बल दिया तथा दलितों को उनके हक के लिए आवाज उठाना सिखाया। अम्बेडकर के इस संघर्ष को रेखांकित करते हुए रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि- "जब बाबा साहब अम्बेडकर ने भारत में मनुष्य की एक जमात- जो हिन्दू धर्म का अंग माने जाते हुए भी उससे बहिष्कृत थी- मनुष्यता के सब अधिकारों से वंचित थी को शिक्षित, संगठित और चेतन होकर संघर्षरत होने का आह्वान किया और उन्हें यह अहसास दिलाया कि वे मनुष्य हैं, सवर्णों के सेवक या गुलाम नहीं तो वे उठ खड़े हुए और अपने इर्द-गिर्द झाँकने लगे। अपने जीवन को, अपनी परिस्थितियों को टटोलने लगे। अतीत में जाने लगे। वर्तमान के यथार्थ को समझने-पहचानने लगे। उनकी आँखों में उग आए भविष्य के सपने। आँखें- जो केवल पिछले जन्म को ही देखने की- अपने कर्मों का फल भोगने की नियति को ही सच समझने की आदी थीं, वे आँखें अब अपने मनुष्य रूप को पहचानने लगीं।"[1]

फिर भी आजतक दलितों को उनका वास्तविक हक नहीं दिया जा सका है। आज भी सवर्णवादी मानसिकता के लोग दलितों का दलन करने में लगे हुए है। वे दलित को हमेशा से अभावग्रस्त रखने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद हर प्रकार का तिकड़म लगाए बैठे हैं।

जाति व्यवस्था एक मानसिक बीमारी है, जो एक को श्रेष्ठ और दूसरे को नीचा साबित करने पर तुला हुआ है। इस सोच ने एक के अन्दर इतना अभिमान, दम्भ और दर्प भर दिया है कि वह दूसरे निम्न कहे जाने वाले वर्ग को अपने पैर की धूल के मैल से भी गन्दा समझता है। इस नीच मानसिकता का स्तर हमारे समाज में किस हद तक गहराई में बैठा है, इसका वीभत्स रूप आये दिन देखने को मिल ही जाता है। जहाँ आज भी पानी का मटका छू देने भर से ही बच्चों तक को पीट-पीटकर मार डाला जाता है। हालांकि हम 21वीं सदी में पहुंच चुके हैं, पर हमारी सड़ी हुई मानसिकता अभी भी उसी पुरानी जगह अटकी हुई है, जहां एक को आसन पर बैठाकर पूजा जाता है। उसके पैरों को माथे पर लगाया जाता है, उसके चरणों के धूले पानी तक को भी अमृत समझकर पिया जाता है। वहीं दूसरे वर्ग को रस्सियों से बांधकर घसीटा जाता है, पूरे शहर में नंगा करके दौड़ाया जाता है। दलितों पर हो रहे अमानुषिक अत्याचार मानवीय गरिमा के लिए एक गाली है। जो मनुष्यता को निर्लज्जता की ओर ढकेल देती है।

भारत में दलितों की सामाजिक स्थिति वैसे भी फ़ुटबॉल की तरह है जिसे कोई भी लात मारकर निकल जाता है, लेकिन राजनैतिक स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं

कही जा सकती। वो तो भला हो डॉ भीमराव अम्बेडकर का जिन्होंने दलितों के सामाजिक अस्तित्व को सुधारने के लिए आरक्षण की व्यवस्था कर दी थी, वरना ना जाने आज दलितों को किस गर्त में जीवन गुजारना पड़ता। इसके बावजूद आज तक दलितों को आरक्षण का वास्तविक लाभ नहीं मिल पाया है। आज भी दलित, आदिवासी तथा पिछड़े वर्ग के पदों के लिए 'अभ्यर्थी योग्य नहीं है' लिखकर सरकारी नौकरियों से दलित, आदिवासी तथा पिछड़े समाज को वंचित करने का प्रयास लगातार जारी है। हालांकि निम्न श्रेणी की नौकरियों को छोड़ अन्य कोई अच्छे पद पर दलित को अगर नियुक्ति मिल भी जाती है तो तथाकथित सवर्ण वर्ग उसे ऐसे देखता है, जैसे उसे नौकरी अपनी मेहनत से नहीं बल्कि भीख में मिली हो। जबकि सरकार ने सवर्ण वर्ग के लिए भी आर्थिकता के नाम पर आरक्षण का प्रावधान कर चुकी है। जिसे अन्य समाज सुदामा कोटा कहता है। इसका लाभ लेने में कोई सवर्ण वर्ग पीछे नहीं छुटना चाहता। भले ही इसके बाद वह आरक्षण को गाली देता फिर रहा हो।

ब्राह्मणवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि वह हर अच्छे कार्यों का श्रेय अंततः ब्राह्मणों को ही देने में सफल हो जाता है। आदि देव पशुपति हो या बुद्ध, रैदास से लेकर कबीर आदि जितने भी महात्मा हुए सभी को ब्राह्मणों ने अपने में आत्मसात् कर लिया और इसमें भी सन्देह नहीं है कि यदि सूचना और संचार क्रान्ति नही होती तो शायद अबतक डॉ भीमराव अम्बेडकर को भी किसी न किसी ब्राह्मणवाद का मूल घोषित कर दिया गया होता। हालांकि उन्हें ब्राह्मण बनाने की मशक्कत लगातार जारी है। जिसके नमूने अक्सर देखने-सुनने को मिल जाते हैं।

प्रारम्भ से ही दलित साहित्य की चेतना साहित्यिक सौन्दर्य, भोग और विलास के विरोध में रही है। दलित साहित्य चिन्तन में मानवीय अस्मिता का अस्तित्व केन्द्र में है। जिसे वह बराबर बनाए रखने के लिए संघर्षरत् है। इस साहित्य के स्वर में आक्रोश के साथ करुणा है। जिसका मूल सामाजिक विद्रोह के साथ-साथ आन्तरिक विद्रोह हैं। जहाँ संसार में सभी प्रकार के साहित्य में कला और सौन्दर्य को प्रधानता दी गई है। वहीं दलित साहित्य के केन्द्र में यथार्थ और जिजीविषा को दिखाया गया है। साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र को लेकर दी गई दलितों कीअवधारणा के आते ही हिन्दी साहित्य के काव्य सौन्दर्य की पूरी की पूरी परिपाटी प्रश्नचिह्न के घेरे में आ गई। जिस ओर इशारा करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि- "हिन्दी आलोचकों के सामने एक और बड़ी समस्या खड़ी हुई, अभी तक वे जिस महानता और सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक श्रेष्ठता भाव के अभिमान से चूर थे, दलित लेखकों ने उनके पुनर्मूल्यांकन का मुद्दा उठाकर उनके सामने एक विकट समस्या खड़ी कर दी। उनका श्रेष्ठ दलित के लिए श्रेष्ठ नहीं था। यह एक ऐसा सवाल था, जो साहित्य की लोकतान्त्रिकता से जुड़ा हुआ है। क्योंकि भारतीय जीवन में जो सामाजिक अन्तर्विरोध व्याप्त हैं उनपर साहित्य चुप्पी साधे बैठा था। थोड़ी-बहुत सिद्धों, नाथों, सन्तों ने आवाज उठाई थी लेकिन वह भी नक्कार खाने में तूती ही साबित हुई थी। जिसे आध्यात्मिकता के आवरण में लपेटकर दबा दिया गया। कबीर जैसे चेतना से भरे कवि को भी रहस्यवाद की ओर मुड़ना पड़ा। लेकिन दलित साहित्य ने निराला, प्रेमचन्द, तुलसीदास को भी अपने प्रश्नों के दायरे में लिया तो साहित्य में जैसे एक ऐसे विरोध का स्वर उठा मानो दलित साहित्य ने कोई अनैतिक जुर्म कर दिया हो। या साहित्यिक कृतियाँ धार्मिक पवित्र ग्रन्थ हैं। जिन पर दलितों को बात करने का शास्त्रीय प्रतिबन्ध है। जिसकी अवमानना करने पर दंड का भागीदार बनना पड़ेगा।"[2]

दलित साहित्य लेखन ने अपने विद्रोह को प्रकट करने के लिए सबसे सशक्तविधा के रूप में आत्मकथा को अपनाया है। सामान्यता आत्मकथा लेखन कार्य करते समय लेखक का जोर इस बात पर रहता है कि कहीं उससे कुछ ऐसी चुक ना हो जिससे उसकी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा धूमिल हो जाए और प्रायः वह उस अतीत की घटनाओ में कल्पना का मिश्रण करके उसके सत्य को छुपा जाता है। इस कारण जो यथार्थ वास्तव में उभरकर सामने आने चाहिए वह इस मिश्रण में घूल जाता है। लेकिन इस विधा के दलित साहित्यकारों ने अपने जीवन के अपमान, ग्लानि और क्षोभ को सबसे सशक्तरूप में उकेरा है। जो साहित्य को वास्तविकता के धरातल पर ही नहीं लाती बल्कि साथ ही पाठक को अन्दर से झकझोर भी देती है।

दलित साहित्य लेखन करते समय गैर दलितों के सामने कई बार ऐसे प्रश्न आ जाते हैं कि वह चाहकर भी उन प्रश्नों का अंकन नहीं कर पाता। जिसका अनुभव यह लेखन कार्य करते हुए मुझे भी अच्छी तरह से हो रहा है और यहीं गैर दलित लेखक वास्तविकता को उभारकर बाहर नहीं ला पाता, जो कि दलित साहित्य के लिए अत्यन्त ही आवश्यक है। इसलिए दलित साहित्यकारों का कहना कि दलित साहित्य की वास्तविक अभिव्यक्तिकेवल दलित ही कर सकता है, जो कुछ हद तक सही मालूम होता है। कोड़ो की मार से उधरी शरीर की चमड़ियाँ और रिसते खून को देखकर हम उसके चोट और दर्द का अनुमान तो कर सकते हैं, किन्तु इस पीड़ा को तो वही बयां कर सकता है जिसने साक्षात् इसे भोगा हो। दलित साहित्य में यह बहस सदा से चली आ रही है कि दलित साहित्य की वास्तविक अभिव्यक्तिदलित ही कर सकता है। ज्योतिबा फूले के शब्द बहुत पहले ही इस तरफ इशारा कर चुके हैं कि- "गुलामी की यातना जो सहता है, वही जानता है। राख ही जानती है, जलने का अनुभव और कोई नहीं।"

हमारे समाज में भी इसी प्रकार की लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं। जैसे कि- 'जाके पांव ना फटे बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई।'

इस प्रश्न के मूल में यही सहानुभूति और स्वानुभूति का द्वन्द्व खड़ा हो जाता है। परन्तु ऐसा भी नहीं है कि गैर दलित की सहानुभूति दलितों के स्वानुभूति के बराबर नहीं पहुँच सकती। कई बार सहानुभूति स्वानुभूति की सीमा के पार चला जाता है। इसलिए दलित चिन्तन पर कुछ भी कार्य करने से पहले लेखक को स्वयं की अनुभूति का मूल्यांकन करना आवश्यक हो जाता है कि क्या उसकी सहानुभूति उस सीमा तक पहुंच सकी है? जहां पर खड़े दलितों की स्वानुभूति की वह बराबरी कर सकें। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए चमन लाल लिखते हैं कि- "यह प्रश्न केवल दलित साहित्य के सन्दर्भ में ही नहीं, प्रगतिशील/जनवादी साहित्य के सन्दर्भ में भी उठता रहा है कि बिना मज़दूर या किसान वर्ग की पीड़ा का अनुभव किए, क्या एक मध्यवर्गीय सुविधा सम्पन्न लेखक मज़दूर-किसान क्रान्ति का सच्चा समर्थक हो सकता है या उनके संघर्षों का सच्चा चित्रण अपने लेखन में कर सकता है? उस सन्दर्भ में 'डिक्लास' होने या अपने वर्ग की सीमा से मुक्तहोने की स्थिति में ऐसा होना सम्भव माना गया है, यद्यपि 'डिक्लास' होना अत्यन्त कठिन व जटिल प्रक्रिया है और बहुत ही कम लेखक या बुद्धिजीवी इस कसौटी पर खरे उतरते हैं बुद्धिजीवी या लेखक तो दूर की बात, स्वयं क्रान्तिकारी पार्टियों के नेता भी कभी 'डिक्लास' होकर मज़दूर-किसान वर्ग से जुड़ते नज़र नहीं आते, दलित लेखन के सन्दर्भ में भी यही कहा जा सकता है कि भले ही बहुत कम लेखक ऐसा कर पाते, लेकिन 'अप दीपो भव' को मानकर, गैर-दलित लेखक भी दलित साहित्य के सर्जक हो सकते हैं।"[3]

दलित साहित्य पर बराबर यह आरोप लगाया जाता रहा है कि वह साहित्य से कहीं ज्यादा राजनीति है। परन्तु अगर ऐसा आरोप लगाना प्रारम्भ कर दिया जाए तो हिन्दी साहित्य का लगभग पूरा का पूरा इतिहास जाति परम्परा को प्रतिष्ठित करने में लगा हुआ नजर आता है। चाहे वह आदिकाल हो, भक्तिकाल हो, रीतिकाल हो या फिर आधुनिककाल लगभग सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य राजा-महाराजाओं और पण्डितों के गुणगान से पाट दिया गया है। यहां तक की रामचन्द्र शुक्ल अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक-एक करके कवियों की उंची-नीची जातियां गिनाई है। इसके साथ ही जब-जब हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन किया जाता रहा है, तब-तब जाति परम्परा का विशेष ख्याल रखा गया है। जिस कारण दलित चिन्तकों ने लोगों का ध्यान इस ओर आकृष्ट कर साहित्य चिन्तन में एक नया आयाम जोड़ने का प्रयास किया है। इस सन्दर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं कि- "दलित चिन्तन ने नया आयाम देकर साहित्य की भावना का विस्तार किया है। पारम्परिक और स्थापित साहित्य को आत्मविश्लेषण और पुनर्विश्लेषण के लिए बाध्य किया है। झूठी और अतार्किक मान्यताओं का निर्ममता से विरोध किया है। अपने पूर्व साहित्यकारों के प्रति आस्थावान रहकर नहीं, बल्कि आलोचनात्मक दृष्टि रखकर दलित साहित्यकारों ने पुनर्मूल्यांकन की जद्दोजहद शुरू की है, जिससे जड़ता टूटी है।"[4]

हमारे साहित्यिक समाज में राजनीति की बहुत गहरी पैठ है। जो साहित्य को बहुत हद तक नियन्त्रित भी करती है। दलितों का राजनीति के गलियारों में गहरी पैठ

नहीं है। आज भी राजनीति में दलित नेता बस पिछलग्गू बने फिर रहे हैं। इसलिए साहित्य से भी इन्हें किनारे ही रखा जाता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि अब तक पैंसठ से ज्यादा साहित्य अकादमी पुरस्कार दिए जा चुके हैं, परन्तु एक भी पुरस्कार दलित साहित्य के लिए दलित लेखक को शायद ही मिला हो। इसमें आश्चर्य की कोई बड़ी बात नहीं बल्कि हमारे साहित्य के समाज की वह सच्चाई है, जिस पर ना किसी की नजर जाती हैं और ना ही कोई सवाल उठाता हैं। सब के सब अपने गुटबाजी में एक को नीचा दिखाने में तथा दूसरे के गुणगान में मग्न है। यथार्थ और जीवन मूल्यों से इन्हें क्या ही लेना-देना। इन्हें तो अपने फायदे से मतलब है। जो कि अपने हिस्से से भी अधिक चाहिए होती हैं। ऐसा सिर्फ हिन्दी साहित्य में ही नहीं है, बल्कि तमाम भारतीय भाषाओं के साहित्य में सवर्णवाद का ही दबदबा आज भी बनाए रखा गया है। इन्हीं विसंगतियों की आलोचना करते हुए दलित साहित्य के वरिष्ठ लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि जी लिखते हैं कि- "दलित साहित्य जीवन के प्रत्येक अंग का विरोध करता है, जो झूठ के सहारे खड़ा है। चाहे वह राजनीति हो या धर्म, या फिर साहित्य। हिन्दी साहित्य के लिजलिजेपन को दूर कर उसे जीवन्त बनाना है तो नए सिरे से साहित्य की समाजशास्त्री आलोचना विकसित करनी होगी, जिसका नितान्त अभाव है।"[5]

आगे दलित साहित्य की पक्षधरता को और भी स्पष्ट करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं कि- "दलित रचनाकार सामाजिक बदलाव का पक्षधर हैं, सामाजिक विघटन, शोषण एवं कठमुल्लापन का नहीं।"[6]

एक बात तो स्पष्ट है कि जब तक जाति व्यवस्था अस्तित्व में रहेगा, तब तक एक को श्रेष्ठ और दूसरे को नीचा बनाए रखे जाने की प्रवृत्ति कायम रहेगी। दलित साहित्य में जो विद्रोह है, वह इसी जाति व्यवस्था से हैं। दलित रचनाकार अपने आक्रोश के दम पर जाति व्यवस्था को तोड़कर एकता और समरसता का राज्य कायम करना चाहते हैं। हम जिस इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं, वहाँ आज भी भंगी, चमार, डोम जैसे जातियों के शब्द गालियों के लिए प्रयोग किए जा रहे हैं। यह परम्परा सिर्फ इसलिए चली आ रही है कि नीची जाति कभी भी मानसिक रूप से सशक्तना हो सके और उसे नीच बने रहने के मानसिक पंगुता का एहसास बराबर याद दिलाया जा सके। इससे बचने के लिए इन जातियों के लिए हरिजन शब्द को प्रचलन में लाया गया। मगर लोग भूल जाते हैं कि केवल नाम बदल देने से किसी की स्थिति और इतिहास नहीं बदल जाता। इस सन्दर्भ में आगे जो होना था, वही हुआ धीरे-धीरे हरिजन शब्द को भी गाली के रूप में प्रचलित किया जा चुका है।

एक बात को विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि जो यह तथाकथित सवर्ण वर्ग और मध्यवर्ग के साहित्यकार जो अपने आपको दलित साहित्य का परम हितैषी साबित करने पर तुले है। वह वास्तव में दलित साहित्य की आड़ में दलितों को ही गुमराह करने में लगा हुआ हैं। यह आस्तीन के वे सांप है जो दिखाने के लिए आपके परम हितैषी हैं। परन्तु समय आने पर अपना सारा का सारा जहर आपके नसों में उतार देते हैं। आज इन्हीं मौका परस्त लोगों से दलितों को सबसे ज्यादा बचने की जरूरत है। क्योंकि दलित साहित्य के मुखौटे के आड़ में ये तथाकथित सवर्ण उस क्रूर पाशविक चेहरे को छुपा जाते हैं जिसकी घुट्टी जन्म से ही इन्हें पिलाई गई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. दलित कहानी संचयन, रमणिका गुप्ता, पृष्ठ संख्या 13, वर्ष 2012, साहित्य अकादमी, दिल्ली।
2. दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।
3. दलित साहित्य एक मूल्यांकन, प्रो. चमन लाल, पृष्ठ संख्या 21-22, वर्ष 2009, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली।
4. दलित साहित्य साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ संख्या 26, तीसरा संस्करण 2019, राधाकृष्णन प्रकाशन
5. बदलाव का साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ संख्या 194, दलित प्रसंग सम्पादक- प्रणव कुमार बन्धोपाध्याय
6. वही

पूर्व शोधार्थी , हिन्दी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय

कामकाजी नारी के स्वरूपः चित्रा मुदगल की कहानियों के विशेष संदर्भ में

विष्णुप्रिया एस

शिक्षा के बल पर आज की नारी कामकाजी बनी है और चार दीवारी की कैद से मुक्ति पा चुकी है। कामकाजी नारी के विषय में डॉ. प्रमीला कपूर का कथन है- "यह शब्द उन स्त्रियों के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो वेतनवाले काम-धन्धों में लगी हैं, उनके लिए नहीं जो समाज-सेवा में रत हैं या अनैतिक रूप से काम कर रही हैं।"[1] कामकाजी नारी को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है-

अविवाहित कामकाजी नारी : विभिन्न कार्यालयों में अविवाहित नारियों की संख्या अधिक देखने को मिलती है। उसका एक मुख्य कारण शादी के बाज़ार में कामकाज नारी का मोल अधिक है, उसका चुनाव तुरंत हो जाता है, भले ही वह बदसूरत भी क्यों न हो। चित्रा मुद्‌गल ने इसका दृष्टांत 'लाक्षागृह' कहानी के ज़रिए पाठकों के सामने रखा है, जो अत्यंत वास्तविक एवं मर्मस्पर्शी बन गया है।

'लाक्षागृह' की नायिका सुनीता को मेट्रिक पास होते ही रेलवे की नौकरी मिल गई। वह दिखने में बदसूरत है। इस वजह से उसकी शादी की बात कभी पक्की नहीं हो पाई। सुनीता के कार्यालय में सिन्हा सहकर्मी के रूप में आया, जिसने सुनीता से शादी का प्रस्ताव रखा। दोनों की सगाई हो जाती है। सुनीता अपने सुंदर भविष्य की कल्पना में दिन बिताती रही। एक दिन कार्यालय के एकांउट्स विभाग में जाते समय उसने सिन्हा और स्वामिनाथन के बीच हुई बातचीत सुनी। सिन्हा कह रहा था कि उसके घरवाले बेरोज़गार आशा से उसकी शादी करवाना चाहते थे, लेकिन जीवन और व्यावहारिकता को एक दूसरे का पूरक माननेवाला सिन्हा ने ऐशो आराम ज़िन्दगी जीने के लिए ही कामकाजी सुनीता को चुना है, भले ही वह बदशक्ल क्यों न हो, महीने अच्छा-खासा कमाती है, दुधारू गाय जैसी है- "सौदे की कोई शक्ल सूरत नहीं होती मेरे यार! सोच आठ सौ रुपया महीना कमानेवाली कहाँ मिलेगी?"[2] सुनीता टूट जाती है, फिर भी वह अपने आत्मसम्मान की बलि नहीं देती। सिन्हा से वह सगाई तोड़ देती है।

'ट्रेन छूटने तक' एक मध्यवर्गीय परिवार की कामकाजी लड़की की कहानी है। शुभा, रवि से प्रेम करती है, लेकिन रवि किसी दूसरी लड़की से शादी कर लेता है। शुभा रोज़ दफ्‌तर ट्रेन से जाती है। एक दिन शुभा को प्लैटफ़ार्म पर ट्रेन का इंतज़ार करते हुए, बीते दिनों की यादें आ जाती हैं। शुभा अपनी पारिवारिक समस्याओं से ग्रसित है। पापा की मृत्यु के बाद परिवार का दायित्व उस पर आ जाता है। अतः घर के खर्च चलाने की खातिर उसे पैकिंग डिपार्टमेंट में काम करना पड़ा। जब शुभा का विवाह रवि से नहीं हो पाता तो माँ प्रसन्न हो जाती हैं। माँ चाहती हैं कि शुभा का घर न बस जाय ताकि उन्हें बेटी की मेहनत के पैसे मिलते रहे।

'लिफ़ाफ़ा' कहानी के ज़रिये चित्रा जी यह दर्शाती हैं कि किस तरह कामकाजी बेटी को अपने घर में मान्यता मिलती है और वह उसका बुरा लाभ उठाती है, जबकि बेरोज़गार बेटा अशोक परिवारवालों की उपेक्षा का पात्र बनकर रह जाता है। कमाई की वजह से अनु घमण्डी हो जाती है। माँ-बाप उसकी पसंद की कदर करते हैं और बेरोज़गार अशोक की ओर ध्यान भी नहीं देते। नौकरी के मानदंड पर बेटे और बेटी में भेदभाव रखते माँ-बाप, कामकाजी होने का पूरा-पूरा लाभ उठाती अनु जैसी नारी

का अहंकार, बेरोज़गार अशोक की पीड़ा आदि को लेखिका ने बड़ी सहजता से इसमें चित्रित किया है।

विवाहिता कामकाजी नारी : चित्रा जी की कहानियों में विभिन्न कार्यालयों में कार्यरत विवाहिता नारियों की कई समस्याओं का अंकन है। घर और नौकरी दोनों को संभालने में विवाहिता कामकाजी नारी कितनी मेहनत करती है इसका उत्तम उदाहरण उनकी 'दरमियान', 'प्रमोशन', 'बावजूद इसके', 'स्टेपनी' आदि कहानियों में द्रष्टव्य है।

'दरमियान' कहानी में घर-दफ्तर के कामों की अधिकता से उत्पन्न मानसिक तनाव के कारण अचानक आये 'मासिक धर्म' की पीड़ा आकांक्षा को इतना आहत कर देती है कि वह सोचने लगती है- "क्यों हुई औरत जात, औरत होना नरक है।"[3] उसकी डेढ़ साल की बेटी मिनी को सुबह शिशु-सदन में वह पहुँचा देती है और शाम को लेने जाती है। एक दिन शाम को उसे ले आने में देरी हो जाती है, बेटी रोती चिल्लाती माँ की प्रतीक्षा करती है। आकांक्षा भी परेशान हो जाती है। नौकरी और परिवार को संभालने के भाग-दौड़ में फँसी, नारी का चित्रण इस कहानी में बहुत रोचक बन पडा है।

'प्रमोशन' कहानी में सुभाष की पत्नी ललिता की तरक्की को शंका की दृष्टि से देखता है। वह सोचता है कि प्रमोशन ललिता की काबिलीयत की वजह से नहीं, बल्कि बॉस कोठारी के साथ पत्नी के अवैध संबंध की खातिर मिला है। वह पत्नी से नौकरी त्यागने को कहता है, तो ललिता कहती है- "न नौकरी मैंने तुम से पूछकर की थी, तुम्हारे कहने पर छोडूँगी।"[4]

'बावजूद इसके' कहानी की प्रीति पति गोयल की मार-पीट सहती ससुराल में रहती है। तंग आकर वह तलाक देकर आत्मनिर्भर बनने के इरादे से मायके आ जाती है। वहाँ रहकर वह एक फाइव स्टार हॉटल में रिसपशनिस्ट का काम करने लगी। गोयल प्रीति को नौकरी से बाहर करने के लिए होटल मैनेजर को चिट्ठी भेजता है। मैनेजर द्विवेदी इसका फायदा उठाता है। मैनेजर के इस अप्रत्याशित व्यवहार से प्रीति को धक्का लगता है और वह नौकरी से इस्तीफा देने का फैसला लेती है। दूसरे ही पल वह त्यागपत्र को यह सोचते हुए फाड़ देती है कि, "द्विवेदी ! द्विवेदी तो हर दफ्तर के कैबिन में मौजूद हो सकता है। लड़ाई खुद की है, फिर? कोई अंत है.... कोई अंत नहीं.... उसके हिस्से में नहीं।"[5]

'स्टेपनी' कहानी कामकाजी नारी की खुशहाल और उजड़ी गृहस्थी दोनों को एकसाथ दर्शाती है। आभा घर और नौकरी दोनों को एकसाथ ले जाने में असमर्थ है अतः। वह घर संभालने नौकरानी बताशा को काम पर रखती है। बताशा और आभा के पति विनोद के बीच अवैध संबंध शुरू हो जाता है। आभा को इसकी खबर मिलती है। लेकिन वह चुपचाप सहने का निर्णय यह सोचते हुए लेती है कि बताशा को निकालकर दूसरी नौकरानी रखे, तो भी विनोद आपके साथ यौन संबंध रखेगा। आभा नौकरी छोड़ने को तैयार नहीं है। इस तरह आभा घर की नौकरानी बन जाती है और बताशा मुख्य रहिया।

विधवा कामकाजी नारी : 'सुख' कहानी की सुमंगला जादवपुर विश्वविद्यालय की प्रवक्ता है। वह एक विधवा है, घर में उसके सिवा बेटी और माँ हैं। सुमंगला का तबादला कोलकत्ता में होता है, तो उसे दिन-रात घर में रहनेवाली एक नौकरानी की ज़रूरत पड़ती है। बहुत ढूँढने पर फूली नामक एक नौकरानी मिल जाती है। एक हफ्ते बाद फूली काम छोड़कर चली जाती है। क्योंकि जिस घर में मर्द नहीं है यहाँ उसका मन नहीं रमता।

'ताशमहल' कहानी की शोभना सरकारी अधिकारी है, जिसके पति दिवाकर की मृत्यु हो चुकी है और वह

अपने बेटे बच्चू के साथ जीवन बिता रही है। दफ्तर में काम करनेवाले निशीथ उससे शादी करना चाहता है। शोभना इस शर्त पर शादी करने को तैयार हो जाती है कि उसे दूसरा बच्चा नहीं चाहिए। शादी के बाद वह गर्भवती हो जाती है तो निशीथ ने उसे यह कहकर बच्चा गिराने से रोक लिया कि वह आनेवाले बच्चे और बच्चू में कोई फरक नहीं रखेगा। दोनों को समान रूप से प्यार करेगा। नयी संतान के पैदा होते ही निशीथ में भारी-भरकम बदलाव आया। वह बच्चू को पीटने लगा, उसकी उपेक्षा करने लगा। इस से दुखी शोभना निशीथ और रोनू को छोड़कर बच्चू के साथ तबादले पर शिमला चली जाती है।

तलाकशुदा एवं परित्यक्त कामकाजी नारी : 'मुआवजा' की शैलू विमान परिचारिका है। वह ससुरालवालों की निंदा एवं पति सुमिता के आर्थिक दोहन और मानसिक उत्पीड़न के खिलाफ आवाज़ उठाती है और पति को छोड़कर मायके चली आती है। कानूनी तौर पर तलाक न होने पर भी तीन-चार साल से वे अलग रहते हैं। इसी बीच एक विमान-दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो जाती है। मुआवजे में मिले पैसे पर सुमित अधिकार स्थापित करना चाहता है, जबकि शैलू के माँ-बाप मुआवजे की राशि शैलू की इच्छानुसार वनिता आश्रम को दान करने का निश्चय कर लेते हैं।

'शून्य' कहानी में कामकाजी नारी के मातृत्व पर प्रकाश डाला गया है। घरवालों के दबाव पर राकेश सरला से विवाह करता है। जबकि वह शादीशुदा बेला से प्यार करता है। दीपू के जन्म के बाद राकेश और सरला कानूनी तहत अलग हो जाते हैं। सरला को कॉलेज में अध्यापिका की नौकरी मिल जाती है और वह दीपू के साथ अपनी ज़िंदगी गुजारती है। राकेश बेला के साथ विवाह कर लेता है और वह गर्भवती हो जाती है। लेकिन दुर्भाग्यवश एक दुर्घटना में उसका बच्चा खो जाता है। डॉक्टर से पता चलता है कि वह दुबारा माँ नहीं बन पायेगी। तभी राकेश को दीपू की याद आती है और वह सरला से दीपू को माँगता है। कामकाजी होने के नाते वह अपने पुत्र दीपू को किसी भी कीमत पर राकेश और बेला को देना नहीं चाहती। वह सुप्रीम कोर्ट तक लड़ने के लिए तैयार है। कामकाजी न होती तो शायद समझौता कर लेती।

आज की नारी ने अपने जीवनानुभवों से नई सीख ली है और धीरे-धीरे इस ओर कदम बढ़ाया भी है कि आज वह सभी क्षेत्रों में पुरुष के बराबर काम कर रही है। घर और दफ़्तर के बीच वह संघर्षशील होकर अपने अस्तित्व का परिचय देने लगी है। हार मानना और पीछे मुड़कर देखना उसने अब छोड़ दिया है। आर्थिक आत्मनिर्भरता ने ही उसे इसका काबिल बनाया है। कामकाजी होने के नाते अपने पैरों पर खड़े होकर विपरीत परिस्थितियों से लड़ने की क्षमता उस में आ भरी है। चित्रा मुद्गल की कामकाजी नारी इस दृष्टि से सफल और सशक्त नज़र आ रही है।

सहायक ग्रंथ

1. आदि-अनादि भाग-1,2,3-चित्रा मुद्गल
2. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में नारी-के डॉ.राजेंद्र बाविस्कर
3. चित्रा मुद्गल का कथा साहित्य- डॉ. कल्पना पाटील
4. कामकाजी नारीः मानवीय संबंधों के विघटन-डॉ. धनराज मानधने

संदर्भ संकेत

1. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में नारी, डॉ. राजेंद्र बाविस्कर, पृ.सं. 147
2. आदि-अनादि-1, चित्रा मुद्गल, पृ.सं. 239
3. वही, पृ.सं. 171
4. आदि-अनादि-2, चित्रा मुद्गल, पृ.सं. 264
5. वही, पृ.सं. 126

शोध निर्देशिका : डॉ षीबा शरत

शोध छात्रा,
यूनिवेर्सिटी कॉलेज,तिरुवनन्तपुरम।
मोः 9496039075

असगर वजाहत के नाटकों में धर्म एवं सांस्कृतिक सौहार्द की भावना

डॉ नीरजा वी एस

संस्कृति एक बहुअर्थी एवं बहु आयामी शब्द है। इस शब्द में संस्कार या परिष्कार का भाव निहित है।अतः मानव व्यवहारों और चिंतनों का परिष्करण ही संस्कृति है। यह एक सीखा हुआ व्यवहार है, इसे व्यक्ति समाज में समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखता है।यह सीखना जन्म से मृत्यु तक अनवरत चलता रहता है। साहित्य को संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है जिस प्रकार धर्म दर्शन और कला संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग है उसी प्रकार साहित्य भी संस्कृति का एक आवश्यक अंग है।किसी देश का सांस्कृतिक विकास उस युग में माना जाता है जब उस देश का साहित्य प्रगति कर रहा होता है। साहित्य की सभी विधाओं में संस्कृति के सभी अंग पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति पाते रहे हैं। इसलिए संस्कृति तथा साहित्य एक दूसरे के पूरक माने गए हैं। इतना ही नहीं किसी भी देश की संस्कृति को साहित्य के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया भी जा सकता है।

भारतीय परंपरा के अनुसार संस्कृति पाँच चीजों पर टिकी होती है।धर्म, दर्शन, इतिहास, वर्ण तथा संस्कार।इनके आधार पर संस्कृति का निर्माण तथा विकास होता है। इन पांच चीजों में संस्कृति और धर्म का गहरा संबंध है। सांस्कृतिक सौहार्द स्थापित करने के लिए या बनाए रखने के लिए हमें धर्म के बाह्य आडंबरों से दूर रहना होगा। धर्म के नाम पर जाति के नाम पर या मूर्तियों के नाम पर होने वाले सांप्रदायिक चिंता से दूर रहना होगा। स्वतंत्र भारत के संविधान में धर्मनिरपेक्ष और सांप्रदायिक सद्भाव पर अधिष्टित कौम की संकल्पना है असगर वजाहत के नाटकों में सांस्कृतिक संहार की स्थापना करने का प्रयास उन्होंने किया है।मैनेजर पांडेय के शब्दों "आज के भारतीय समाज में उग्र सांप्रदायिकता की आंधी चल रही है। धर्म के नाम पर घृणा, द्वेष और उन्माद का प्रचार प्रसार हो रहा है। जाति भेद खूंखार जाति- युद्ध बन रहा है। तरह-तरह के दुराग्रहों और संकीर्णताओं का बोलबाला है।"[1] असगर वजाहत के नाटकों में सांस्कृतिक सौहार्द की स्थापना करने का प्रयास उन्होंने किया है।

जिस लाहौर नई देख्या 'ओ जमयायी नई' नाटक एक ऐसी बूढ़ी औरत की कहानी है जो विभाजन के पश्चात लाहौर को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है वजाहत जी के इस नाटक में संस्कृत सौहार्द के विभिन्न रूपों को देखने को मिलते हैं। जैसे एक दूसरे देश की संस्कृति का सम्मान करना ,तीज त्यौहार आपस में मिलजुल कर मनाना, धर्म के बाह्य आडंबरों को मिटाकर सौहार्द स्थापित करना। असगर जी के मत में देश में सभी संस्कृतियों का पूर्ण रूप से सम्मान अनिवार्य है तभी हमारा सांस्कृतिक सौहार्द बना रहेगा।

इस नाटक के प्रमुख पात्र प्रमुख पात्र सिकंदर मिर्जा तथा रतन की मां है।नाटक में सबसे चुनौती पूर्ण किरदार रतन की माँ का है जिसके दिल में सारी दुनिया के प्रति करुणा है प्रेम है। लाहौर के मशहूर सुनार रतनलाल की माँ अपने परिवार वालों के साथ विभाजन के बाद इसलिए दिल्ली नहीं जाना चाहती है क्योंकि उनके विचार में लाहौर जैसा शहर पूरी दुनिया में नहीं है। रतन की माँ एक बूढी औरत है जिसका पाकिस्तान में कोई सगा संबंधी नहीं है। फिर भी वह वहाँ के लोगों के दिलों पर राज करती है। लाहौर के कुछ मुसलमान लोग किसी भी कीमत पर माई को पाकिस्तान से भगाना चाहते हैं।वह अपने कौम में एक गैर बिरादरी की स्त्री की मौजूदगी बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं। वे रतन की माँ को वहां से छुड़वाकर बदले में अपनी कब्जा चाहते थे। अंध धार्मिक कथा मनुष्य को अविवेकी बनाती है,उनकी मानवीयता को मारती है जिसके कारण मनुष्य धर्म के नाम पर ऐसे कार्य करने लगता है जिन्हें किसी भी स्थिति में मनुष्योचित नहीं कहा जा सकता।

रतन की माँ का धार्मिक विश्वास उसे अलगाव नहीं बल्कि दूसरे लोगों से मिलजुल कर रहने की शिक्षा देते हैं। मोहल्ले का मौलवी जो है इस्लाम का वास्तविक स्वरूप अर्थात मानवीयता को सामने रखता है। लेकिन कुछ अन्य इस्लाम धर्मावलंबी लोग जो है धर्म की आड़ में रतन की माँ से घृणा का व्यवहार करते हैं।नाटक का मकसद मानव धर्म का संदेश देना है।कोई भी धर्म आदमी को आदमी से पृथक करने का संदेश नहीं देता है। नाटककार असगर जी ने इस नाटक में बड़ी कुशलता से सांप्रदायिक एकता की पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक धार्मिक संबंधों का रेखांकन किया है।

भारत और पाकिस्तान की संस्कृति अलग-अलग है। फिर भी रतन की माँ दोनों देशों के रस्मों रिवाज अच्छी तरह से निभाती हुई सबके दिल जीती है।रतन की माँ हिंदू होकर मुसलमान के देश में अपनी दिवाली की पूजा करती

है।वह पाकिस्तान में भारत के सभी रीति रिवाज के साथ पाकिस्तान के सभी तीज त्यौहार बड़ी चाव से मनाती है।उस बूढी औरत जिससे ठीक ढंग से चला भी नहीं जाता वह घर घर जाकर सभी का हाल पूछती है सभी का बीमारी में ख्याल रखती है। धर्म एवं संस्कृति हमें एक दूसरे का सम्मान और प्यार करना सिखाती है। 16 दृश्य में लिखे गए इस नाटक में भारत-पाकिस्तान के विभाजन के परिवेश से उत्पन्न सांप्रदायिक त्रासदी का यथार्थ रूप चित्रित हुआ है।

आज के भूमंडलीकरण के दौर में हर चीज का व्यापार हो रहा है।धर्म एवं आध्यात्मिक क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा है।आज धर्म के नाम पर व्यापार चल रहा है। 'समिधा' नाटक स्वतंत्र्योत्तर काल में देश में धर्म और आध्यात्मिक की आड़ में चल रहे वीभत्स कृत्य का पर्दाफाश करने वाला नाटक है।नाटक में धर्म की आड़ में सामान्य वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक की धार्मिक भावनाओं का लाभ उठाकर,साधु महात्माओं से लेकर उनके सूत्रधारों तक धर्म के नाम पर चल रही लूटखसोर पर प्रहार किया गया है। एक बड़ा नाटक है 21 दृश्य में लिखे गए इस नाटक में अंबिका प्रसाद नामक ग्रामीण व्यक्तिकी किसान से स्वामी महाप्रभु सुखानंदाचार्य बनाए जाने की कथा है। इस नाटक में धर्म के बाजारीकरण का चित्रण हुआ है। आज बाहर से एकदम सभ्य दिखने वाला मानव अंदर ही अंदर आज्ञान एवं अंधविश्वास के चंगुल में पड़कर सत्य से कोसों दूर भटक रहा है। इस 21वीं शताब्दी में विज्ञान की उन्नति की तेज रफ्तार में आगे बढ़ने वाला मानव दूसरी ओर उससे भी अधिक तेज रफ्तार में झूठी भक्ति एवं अंधी आस्था में फंस जाते हैं।

भारत जैसे महान देश में अनपढ़ अशिक्षित लोग ही नहीं पढ़े लिखे लोग भी कपड़े साधू संन्यासियों के जाल में फंस जाते हैं।यह अंधी आस्था और अंधविश्वास हमारे देश में कपटी धर्माचार्य को पनपना का बराबर मौका देते हैं। 'समिधा' में असगर जी धर्म और आध्यात्म के पाखंड को सामाजिक नजरिया से प्रस्तुत करते हैं । इस नाटक में नायक अंबिका प्रसाद किसी भी तरह मेहनत मजबूरी करके पैसा कमाने के लिए शहर आते हैं। उसकी एकमात्र बहन को उसके ससुर ने किसी का 8000 का कर्ज चुकाने के वास्ते बेच डालता है। उसकी बहन रामकली से वह आदमी जबरन पेश कर रहा है। बेचारा अंबिका प्रसाद अपनी बहन की जिंदगी बचाने के लिए डी पी दोरिया नामक एक व्यक्ति के पास पहुँचता है। डीपी दोरिया अंबिका प्रसाद को स्वामी सुखानंदाचार्य बना देता है। समूचे विश्व में स्वामी सुखानंदाचार्य की ख्याति हेतु डीपी दोरिया प्रेस ब्यूरो बनाते हैं।अखबारों में न्यूज़ और राइट अप्स छपवाते हैं। इन सब के बाद डी पी दोरिया को पता चलता है कि जिस आदमी को उसने इंटरनेशनल फेम का महाप्रभु स्वामी सुखानंदाचार्य बना दिया है उसकी बहन वेश्या है। धर्म की आड़ में जो सेक्स रैकेट काम करते हैं उसका भी चित्रण इस नाटक में हुआ है। इस नाटक के जरिए असगर जी ने तत्कालीन समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त ऐसे लोगों का पर्दाफाश किया है जो धर्म का बाजारीकरण करते हैं। दोरिया जैसे व्यक्तिके लिए धर्म एक इन्वेस्टमेंट है।वह सुखानंदाचार्य पर जो इन्वेस्ट किया उससे ऊपर उनके नाम पर कमाते हैं।असगर वजाहत ने सेठ दोरिया और अंबिका प्रसाद के माध्यम से समकालीन समाज में धर्म के नाम पर चल रहे घिनौने व्यापार को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

असगर जी का 'गोडसे@गांधी.कॉम' नाटक की परिकल्पना गांधी को गोडसे द्वारा गोली मारने की घटना से निर्मित हुई है। नाटक के शीर्षक स्पष्ट हो जाता है कि नाटक के केंद्र में गोडसे द्वारा गांधी हत्या का प्रसंग इस रचना का आधार है। इस नाटक में गांधी तथा उनके हत्यारे गोडसे के व्यक्तित्व के अंतरविरोधी तत्त्वों को उत्घाटित करने का प्रयास किया गया है। नाटककार अपनी अनोखी कल्पना से दोनों की भेंट चित्रित कर दो भिन्न विचारधारा के व्यक्तियों विचारधारा के परस्पर टकराहट से उभरते मानवीय बिंदुओं को चित्रित किया है। पाकिस्तान बनने के बाद गांधी ने हिंदुस्तान को धर्मनिरपेक्ष देश घोषित किया जिसके लिए गोडसे कट्टर हिंदू जनता का प्रतिनिधित्व करते हुए गांधी को गोली मार देता है।गोडसे को अनेक हिंदू संगठनों का समर्थन प्राप्त होता है। गांधी पर गोडसे का गोली चलाना जनता को दो पक्षों में बंट जाती है। गोडसे की विचारधारा यह मानती है कि हिंदू दर्शन सबसे श्रेष्ठ है बाकी दर्शन छोटे हैं । गोडसे गांधी.कॉम नाटक में असगर जी ने गोडसे और गांधी के बीच रोचक बहस करवाई है। 18 सीन में लिखे गए इस नाटक में गोडसे द्वारा गांधी जी को गोली मारने की तथा गांधीजी की अस्पताल में भर्ती होने की जानकारी दी जाती है। इसके बाद गांधीजी गोडसे से अकेले में मिलने की इच्छा प्रकट करते हैं और अगले सीन में गोडसे से जेल में मिलते हुए दिखाई देते हैं ।दोनों के संवादों से दोनों की विचारधारा का पता चलता है। गांधी जी गोडसे को माफ करने की बात करते हैं तो गोडसे गांधी को हिंदुओं का दुश्मन तथा हिंदुओं की सर्वाधिक हानि करने वाला व्यक्ति कहता है। नाटक के केंद्रीय पात्र नाथूराम गोडसे का संवाद

यहाँ दृष्टतव्य है।, "पाकिस्तान का पिता जिन्ना नहीं गांधी है। हिंदुओं का जितना अहित औरंगजेब ने न किया होगा उससे ज्यादा गांधी ने किया है। पवित्र भूमि पर इस्लामी राष्ट्र का निर्माण उसकी ही नीतियों के कारण हुआ है।"[2]

असगर वजाहत ने इस नाटक की भूमिका में नाटक में समसामयिक राजनीतिक गतिविधियों के संदर्भ में लिखा है। "गोडसे@गांधी.कॉम के केंद्र में गांधीवाद है जिसका विस्तार ही नाटक का मूल कथानक है। राजनीतिक विषय के साथ मानवीय संबंधों के अंतर द्वंद्व के माध्यम से इसके कथन को अधिक ग्राह्य बनाने का प्रयास किया गया है।"[3] ।इस में वजाहत जी यह सवाल उठाते हैं कि हिंदू और मुसलमान को क्यों एक साथ नहीं रह सकते जबकि दोनों धर्म में सबको अपनाने के लिए, सबसे प्यार करने के लिए कहा है। एक धर्म को श्रेष्ठ और दूसरे धर्म को नीचा दिखाने की विचारधारा जो मुस्लिम धर्म से जुड़े हुए नेताओं के मन में थी कुछ ऐसी ही भावना गोडसे की विचारधारा वाले हिंदू लोगों के मन में थी। धर्म से जुड़े हुए कुछ ऐसे ही ज्वलंत प्रश्नों पर 'गोडसे @गांधी.कॉम' चर्चा करता है। जब गोडसे गांधी पर गोली चलाते हैं तब उनकी इस प्रवृत्ति को विभिन्न कट्टरपंथी हिंदू संगठन एक महान कार्य घोषित करते हैं।असगर जी के मध्य में मानवता से बड़ी कोई विचारधारा नहीं है।

असगर जी का नुक्कड़ नाटक 'सबसे सस्ता गोश्त' में लोग धार्मिक आस्थाओं के प्रति उदासीन है। इसलिए पंडित तथा मुल्ला दोनों निराश है। मस्जिद के लिए चंदा कम जमा हो रहा है तथा मंदिर केलिए दान दक्षिणा नहीं मिलती, पूजा पाठ हवन कोई नहीं करता।तब मुल्ला और पंडित को हिंदू मुस्लिम के नेता एक योजना बताते हैं कि वह किसी के जरिए मंदिर में गाय का गोश्त और मस्जिद में सूअर का गोश्त रखें। तब हिंदू मुसलमान दंगा फसाद होगा। गोश्त मंदिर मस्जिद में रखा जाता है और लोग परस्पर एक दूसरे पर इल्जाम लगाते हैं। हिंदू समझते हैं कि मंदिर में गाय का गोश्त मुसलमान ने रखा है और मुसलमान समझते हैं कि मस्जिद में सूअर का गोश्त हिंदुओं ने रखा है।नाटक के अंत में एक आदमी आकर कहता है गोश्त न सूअर का या न गाय का होकर आदमी का है। तब हिंदू और मुसलमान दोनों शांत हो जाते हैं। आदमी का गोश्त है, इस बात का किसी को कोई परवाह नहीं कि आदमी कौन था क्यों मारा गया। जानवरों की गोश्त के ऊपर हिंदू मुसलमान आपस में लड़ते हैं कितने दंगों में कितने आदमी मारे जाते हैं। उनकी कोई परवाह नहीं करता। धर्मांधता के कारण हिंदू मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासी हो जाते हैं। इस नाटक में लेखक ने दिखाया है कि नेता लोग समाज में दंगा फड़कने के लिए किस-किस तरह घटिया चालें चलाते हैं। नाटक की कथावस्तु यह बताते हैं कि सांप्रदायिक दंगे अक्सर होते नहीं करवाए जाते हैं।राजनीतिक नेता लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इस तरह के घिनौने काम करते हैं कि जनता भड़क उठे और आपस में दंगा हो जाए।जब आदमी अपने जन्म से प्राप्त धर्म के प्रति अतिरिक्त आस्था और गौरव का भाव रखता है तब अन्य धर्म के प्रति उनकी दृष्टि कलुषित होने लगती है और धीरे-धीरे इसकी परिणीति धार्मिक कट्टरता में हो जाती है। इसका चित्रण सबसे सस्ता गोश्त नामक नाटक में हुआ है। असगर वजाहत के नाट्य साहित्य में धार्मिक कट्टरता के विविध पहलुओं, कारणों तथा दुष्परिणामों का प्रभावी चित्रण दिखाई देता है।

निष्कर्ष : भारतीय समाज में धर्म का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय धर्म और संस्कृति में समय-समय पर आए हुए परिणाम का चित्रण हिंदी नाटक लेखन के आरंभिक काल से होता आ रहा है।असगर वजाहत ने बड़ी ईमानदारी से तथा मानवतावादी विचारधारा से आज के समाज में दिखाई देने वाले विविध धर्म तथा संस्कृति के यथार्थ को चित्रित करने का प्रयास किया है। असगर वजाहत के नाटकों में भारत के धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का अत्यंत सहज स्वाभाविक एवं यथार्थ रूप में चित्रित किया है। असगर वजाहत का नाट्य साहित्य विश्व व्यापी मानव धर्म तथा मानव कल्याणकारी संस्कृति की अवधारणा स्पष्ट करने वाला नाट्य साहित्य है।उन्होंने समाज में परस्पर सहयोग भाईचारा एवं मानव सेवा के प्रचार से धर्म को जोड़ दिया है। इस तरह असगर वजाहत जी के सभी नाटकों में समसामयिक परिवेश का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण दृष्टिगोचर होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर की खोज, राज किशोर, पृ 293, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली 2005
2. गोडसे@गांधी.कॉम (भूमिका) असगर वजाहत पृ 25 नया ज्ञानोदय,दिल्ली सितंबर 2011
3. वही, पृ 31, नया ज्ञानोदय दिल्ली सितंबर 2011

सहायक आचार्या एवं अध्यक्षा , हिंदी विभाग
सरकारी कॉलेज कोडनचेरी, कालिकट,केरला-673580
मोबाइल : 9496906607

श्रीमद्भगवदगीता : जीवनकला का मार्गदर्शक ग्रंथ

डॉ जयश्री कांतिलाल दवे/ डॉ समीर भूपेंद्रकुमार वाघरोडीया

सारांशः अर्जुन के विषाद को दूर करने के उद्देश्य से गाई गई भगवद्गीता वास्तव में चुनौतियों, धैर्य और जीवन की दुर्दशा से मुक्ति के संकटग्रस्त जीवन-भूमि के संघर्ष के माध्यम से जीत और उत्साह का संचार करती है। 'गीता' समस्याओं को छोटे पैमाने और सीमित क्षेत्र में न देखकर व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण से देखती है। यह मनुष्य को साहस, समस्याओं का सामना करने की क्षमता और उनसे बाहर निकलने का रास्ता खोजने की बुद्धि देती है। यह व्यक्तिगत भावनाओं में बहने की बजाय समाज के हित के लिए अपेक्षित कार्य करने की व्याख्या करती है। आत्म-उद्धार से आत्म-ह्रास नहीं होना चाहिए, क्योंकि मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है। गीता कर्म करने के साथ-साथ उसके प्रति सचेत और संवेदनशील रहने का भी निर्देश देती है।

प्रस्तावना : वैदिक साहित्य भारतीय दर्शन परंपरा का सबसे प्राचीन साहित्य है। बीज में निहित वृक्ष की तरह, भारतीय दार्शनिक परंपरा की प्रत्येक जड़ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वैदिक साहित्य में पाई जा सकती है। जीवन के मूल सिद्धांतों की खोज, जो ऋग्वेद और अन्य वैदिक ग्रंथों से शुरू हुई, उपनिषदों में अपने चरम पर पहुँची हुई प्रतीत होती है। शायद इसीलिए विद्वानों ने भारतीय दर्शन को उपनिषदों का 'फुटनोट' माना है। महर्षि बादरायण रचित ब्रह्मसूत्र और महर्षि वेद व्यास रचित श्रीमद्भगवद्गीता इन्हीं उपनिषद् रूपी धेनु पर आधारित है। जिसको दुहने वाले स्वयं गोपालनन्दन श्रीकृष्ण हैं। और दूध का भोक्ता हैं पार्थ-अर्जुन।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धागोपालनन्दनः/पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत (गीतामहात्म्य,6)

श्रीमद्भगवद्गीता का स्थानः महाभारत के भीष्म पर्व के पच्चीसवें अध्याय से लेकर बयालीसवें अध्याय तक के अठारह अध्यायों में फैला गीता ग्रंथ विश्वविख्यात बहुमूल्य अमर ग्रंथ है, जो मनुष्य को नितनवीन मार्गदर्शन प्रदान करता है। वैदिक धर्म की मूलभूत प्रस्थानत्रयी में गौरवपूर्ण स्थान एवं एक स्वतंत्र उपनिषद की प्रतिष्ठा रखने वाला यह ग्रंथ कालजयी ग्रंथ है। विभिन्न विद्वानों ने गीता की व्याख्या कर्म योग, ज्ञान योग और भक्ति योग के सिद्धांतों पर केंद्रित ग्रंथ के रूप में की है।

'Work is worship' के विचार को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सुन्दर ढंग से समझाते हुए गीता एक मात्र धार्मिक ग्रंथ प्रतीत होता है, जो आम लोगों को तत्त्वज्ञान का उपदेश देता है। इसलिए कुछ लोग इसके व्यावहारिक महत्त्व को स्वीकार नहीं करते हैं, लेकिन वास्तव में गीता अध्यात्म प्रेरित कर्म की शिक्षा को सरल और व्यावहारिक शब्दों में प्रस्तुत कर के आम आदमी को जीवन का अनमोल पाथेय प्रदान करने वाला ग्रंथ है। श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें व्यावहारिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान का प्राकृतिक रूप से संगम है, जो अर्जुन जैसे किंकर्तव्यमूढ़ मनुष्य को हर समस्या में समाधान देकर सुखी और संतुष्ट जीवन की राह दिखाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मवाद : विद्वानों ने गीता को ज्ञान, कर्म और भक्ति तीन रूपों में विभाजित किया है। इन तीनों के सुन्दर सामंजस्य से गीता मानव जीवन के सर्वोत्तम मार्ग का मार्गदर्शन करती है। लेकिन इसका केंद्रीय विचार क्या है? इस मामले पर कई मतभेद हैं।

शंकराचार्य आदि ज्ञानमार्गी विद्वानों ने गीता को मुख्यतः ज्ञान की शिक्षा प्रदान करने वाले ग्रंथ के रूप में देखा- 'सर्वम् कर्मखिलम् पार्थ ज्ञानेन परिसमापयते।' (4,33) अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने के बाद कोई भी कर्म करने की आवश्यकता नहीं है। भक्तिमार्गियों का मानना है कि, गीता में भक्तिमार्ग की मुख्य शिक्षाएँ निहित हैं। अपने मत के समर्थन में वे गीता के श्लोक - 'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।' (18.66) का हवाला देते हैं, जबकि कुछ लोग कर्मयोग पर विचार करने के लिए 'तस्माद् योगी भवार्जुनः।' (6.46) का आधार लेते हैं। गीता के केंद्रीय संदेश के रूप में इन सभी विचारों को ध्यान में रखते हुए,

लोकमान्य तिलक ने अपने गीतारहस्य ग्रंथ में कहा है कि कर्म योग गीता का केंद्रीय उपदेश है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फ़लेषु कदाचन।/मा कर्म फ़लहेतुभूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। (गीता.2.47)

कर्मयोग के चतु:सुत्रीरूप में प्रस्तुत श्लोक के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि, ज्ञानमूलक भक्तिप्रधान कर्मयोग गीता का मध्यवर्ती उपदेश है। तिलक के इस विचार का आंशिक रूप से कई आधुनिक विद्वान स्वीकार करते हैं। शास्त्री और दवे गीता के निष्काम कर्म के विचार के समर्थन में डॉ. पी. एम. मोदी को उद्धृत करते हुए कहते हैं: "गीता मुख्य रूप से कर्म को उत्तम तरीके से करने(योग) का उपदेश देती है। गीता कई मार्ग या इसके 'कई प्रकार' दिखाती है।"

कर्म की अनिवार्यता : गीता के अनुसार प्रत्येक देहधारी मनुष्य को कर्म में सक्रिय रहना पड़ता है। कर्म के बिना मनुष्य एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता है । 'नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत्।' (3.5) कर्म के बिना मानव जीवन संभव ही नहीं है, क्योंकि जीवन स्वयं एक कर्म है। मनुष्य को प्रकृति द्वारा उत्पन्न गुणों के कारण विवश होकर कर्म करना पड़ता है। यह सत्य नहीं है कि केवल कर्म तप से ही सिद्धि प्राप्त होती है। इसीलिए कृष्ण अर्जुन को कर्म करने का उपदेश देते हैं।

कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो हि अकर्मण:।/ शरीर्यात्रोडपि च ते न प्रसिध्ययेत् अकर्मण:।। (गीता.3.8)

अर्थात् 'हे अर्जुन! तू वर्णाश्रम और शास्त्रविहित कर्म कर, कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना ही श्रेष्ठ है। ईतना ही नहीं, बल्कि कर्म न करने से कोई भी शरीर कायम नहीं रह सकता है। ईशावास्योपनिषद् के ऋषि भी यही विचार प्रस्तुत करता है कि, मनुष्य को इस संसार में अशास्त्रीय कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने की कामना करनी चाहिए - 'कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समा:। (ईश.3.2) गीताकार साथ में कर्म करने की अनिवार्यता बताते हैं। गीताकार आम आदमी की मनोदशा की भी बात करते हैं, उनका मत है कि केवल कर्म करना ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उचित और सामाजिक रूप से स्वीकृत कर्म करना भी महत्त्वपूर्ण है। इस विषय में मनुष्य स्वयं को गीता के अर्जुन की तरह असमंजस की स्थिति में पाता है। वह सत्य और नैतिकता के मार्ग पर चलने के लिए नैतिक और अनैतिक कार्यों के बीच भ्रमित रहता हैं और उपनिषदों के 'सत्यं वद्' और 'धर्मं चर' जैसे नैतिक सिद्धांतों और अभ्यास में सामंजस्य नहीं बिठा पाते हैं। ऐसी भ्रामक स्थिति में श्रीमद्भगवद्गीता सही मार्ग दिखाकर दैनिक व्यवहार में उचित कर्म करने का मार्गदर्शन देती है- 'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता:' (गीता.4.16)

स्वधर्म द्वारा निर्धारित कर्म का महत्त्व: कर्म की अनिवार्यता को दर्शाने के साथ-साथ गीताकार यह भी स्पष्ट करते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के लिए कर्म सुनिश्चित हैं, मनुष्य को अपने हिस्से का कर्म करना ही चाहिए न कि दूसरों हिस्से के कर्म। गीता में कहा गया है कि भले ही किसी का अपना कर्म (धर्म) पापपूर्ण हो, किन्तु दूसरे के सुलभ कर्म करने से वह बेहतर है।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। / स्वधर्मे निधन: श्रेय: परधर्मो भयावह:।। (2.35)

गीताकार के अनुसार, दूसरों के कर्मों का अनुसरण करना भयानक है। गीता के अंत में एक और श्लोक - सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् (18.48) भी इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य है - 'जिस प्रकार आग धूएं से ढकी रहती है, तथा हर कार्य में कुछ न कुछ दोष होता है, उसी प्रकार, हे कौन्तेय! यदि किसी व्यक्तिका स्वाभाविक स्वकर्म दोषी है तो भी उसे छोड़ना उचित नहीं है।इस प्रकार, गीता का पूरा जोर कर्म के माध्यम से कर्तव्य की पूर्ति पर है।

निष्काम कर्म : कृष्ण गीता में स्वधर्मयुक्त कर्म समझाकर आगे अध्यात्म प्रेरित निष्काम कर्म का संदेश देते हैं और इसका यह मतलब है कि सन्यास नहीं, परंतु समझपूर्वक किए जाने वाले कर्म का मार्ग ही गीता द्वारा स्वीकृत है। गीता में कर्म करने के उपदेश में यह भी स्पष्ट है कि यहां वह कर्म अभिप्रेत है जो किसी प्रकार का लालसा और व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्तहै। इसके लिए गीता ने निष्काम कर्म करने की सूचना दी है।"

तस्मादसक्त: सततं कार्यं कर्म समाचर।/ असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुष: ।। (3.19)

अर्थात् "अतः तुम्हें अनासक्त रहकर अपना कर्तव्य करना चाहिए। आसक्ति रहित व्यक्ति कर्म करते हुए भी सर्वोच्च कल्याण को प्राप्त करता है।" गीता के निष्काम कर्म का अर्थ यहां यह समझा जाता है कि, मनुष्य को स्वयं को कर्म के अहंकार से मुक्त कर लेना चाहिए। ताकि कोई अहंकार के जाल में फंसकर गलत राह पर न चलना पड़े। कृष्ण साहसपूर्वक कहते हैं कि चाहे तुम बहुतों को मार डालो, फिर भी तुम्हारे कर्म तुम्हें नहीं बांधेंगे, क्योंकि आप अपने कार्य को कर्तव्य के रूप में बिना उसके अहंकार के करते हैं।

यस्य नाहंकृतो भावो बुध्धिर्यस्य न लिप्यते। / हत्वाडपि स ईमान् लोकान् न हन्ति न निबध्यते।। (18.17)

इसी विचार के समर्थन में भारत के राष्ट्रीय जीवन पर गीता के कर्मयोग के प्रभाव पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इस प्रकार गीता में बताए गए ज्ञान, भक्ति और कर्म योग का समाज पर बहुत प्रभाव पड़ा है। लेकिन उनमें कर्मयोग ज्ञानयोग और भक्तियोग से अधिक लोकप्रिय था। पांडिचेरी के आध्यात्मिक गुरु महर्षि अरबिंदो और 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' का उद्घोष करने वाले तिलक और नेताजी ने 'भज गोविंदम' या 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विध्यते' का मार्ग स्वीकार किया होता। खुदीराम बोस जैसे शुरुआती शहीदों को गीता हाथ में लेकर फांसी नहीं दी गई होती। कर्मयोग के मार्ग पर, 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हे आज़ादी दूंगा' जैसे नारे देनेवाले नेताजी आदि के दृष्टांतों को देखकर हम अपने राष्ट्रीय चरित्र पर गीता के कर्मयोग का भारी प्रभाव देख सकते हैं। सामान्यतः गीता ने शूरवीरों को शौर्य और कायरों के हृदय को भेदने वाले शंखनाद के बीच गाई गई है।

कर्म के माध्यम से आध्यात्मिक उन्नति : गीता समस्याओं को छोटे पैमाने पर और सीमित क्षेत्र में देखने के बजाय व्यापक और सामाजिक दृष्टिकोण से देखने का नजरिया देती है। इसीलिए यह अर्जुन को व्यक्तिगत भावनाओं में बहने के बजाय धर्म और समाज के कल्याण के लिए प्रेरित करने के लिए समझाती है, जो अपेक्षित है। गीता 'कर्म योग' का महत्त्व बताकर मनुष्य को धर्म का सही मार्ग दिखाती है। उनके अनुसार अच्छे कर्मों और आत्मसंयम से मनुष्य को उपर उठाया जा सकता है। गीताकार कर्म करते समय उसके प्रति सचेत और संवेदनशील रहने का सुझाव देते हुए कहते हैं, किसी के उच्चतम विकास में उसका अपना योगदान होता है, और पतन का भी अपना योगदान होता है बुरे कर्मों और विचारों से ही मनुष्य अपना पतन करता है। इसलिए मनुष्य को अपनी मुक्ति के लिए कर्म करना ही चाहिए।

उध्दरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्/आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।। (6.5)

अर्थात् मनुष्य को अपने उद्धार का कारण अपनी ही आत्मा है, स्वयं को पतन की ओर नहीं ले जाना चाहिए, क्योंकि मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है।'कर्मवाद की पुष्टि करते हुए गीताकार आगे कहते हैं कि, इस प्रकार जो व्यक्ति अपने स्वाभाविक कर्म के प्रति सचेत एवं समर्पित रहता है, उसे सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त होती है। स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः संसिद्धिं लभते नरः (गीता.18.45)

कर्म के माध्यम से कर्मयोगः गीता मनुष्य के कर्म संबंधी बाहरी जीवन और आंतरिक आत्मा दोनों के सामंजस्यपूर्ण एकीकरण की सुविधा प्रदान करती है। गीता का 'निश्चित' कर्म का दृष्टिकोण मनुष्य को सांसारिक कर्म के माध्यम से भगवान को प्राप्त करने के उच्चतम शिखर तक ले जाता है, इस सन्दर्भ में गीता दोहराती है कि- 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् (2.47) 'तुम्हें केवल उचित कर्म करने का अधिकार है, इसके फल के बारे में कोई अधिकार नहीं है। गीताकार ने कर्मों के फल की प्राप्ति को लक्ष्य नहीं माना और कर्म न करने में कभी आसक्ति नहीं रखी। 'मा ते सङ्गोशत्त्वकर्माणि।' (2.47) इतना ही नहीं, गीता कहती है कि तुम्हें निरंतर आसक्तिरहित होकर अपना कर्तव्य करना चाहिए, क्योंकि जो मनुष्य अनासक्त भाव से कर्म करता है, वही व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है जो परम साध्य है।

तस्मादसकतः सततं कार्यं कर्म समाचर।/असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुषः।। (3.19)

उपसंहारः कुरुक्षेत्र के युद्ध के मैदान में, रथ के सारथि कृष्ण ने जो युद्ध की स्थिति से भयभीत हैं, ऐसे अर्जुन को युद्ध की परिस्थिति से डरा हुआ अर्जुन को युद्ध या

जीवन की कठिन परिस्थितियों से निपटने के लिए, धर्मपताका लहराने का उपदेश दिया है। इससे पता चलता है कि, गीता क्रिया-प्रधान है, निवृत्ति-प्रधान नहीं। अर्जुन के दुखों को दूर करने के उद्देश्य से गाई गई भगवद्गीता वास्तव में जीवन की अशांत भूमि में चुनौतियों का सामना करनेवाले बहादुर योद्धाओं की भूमिका निभाकर कमजोर या निराश इंसान में रोमांच और उत्साह पैदा करती है। यह मनुष्य को साहस, लोगों की समस्याओं का सामना करने की क्षमता और उनसे बाहर निकलने का रास्ता खोजने की बुद्धि देती है। वह हमें कर्मों की वास्तविक प्रकृति दिखाती हैं, उनकी सीमाएँ समझाती हैं, मनुष्य को कर्म के सामान्य स्तर से कर्म योग के अंतिम स्तर तक ले जाते हैं, और हमें भौतिक कर्म छोड़ने के लिए कहे बिना, निष्काम कर्म योग का राजमार्ग दिखाती हैं।

संदर्भग्रंथ सूची

1. विनोबा (2009) गीता प्रवचनो रंजीत देसाई, प्रकाशन समिति। वर्धा। अठारहवाँ संस्करण।
2. श्रीमद् एसी भक्ति वेदांत स्वामी प्रभुपाद (2012) 'भगवद्गीता' भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट। मुंबई। प्रथम संस्करण।
3. सरदेसाई. एस जी (1985) भगवद-तानी के भीतर। पीपुल्स बुक हाउस प्रकाशन। प्रथम संस्करण।
4. नेने राजाभाई (1997) 'गीतादर्शन'स्वर्गीय श्री राजाभाई नेने स्मृति ग्रंथ समिति राजकोट. प्रथम संस्करण।
5. ठक्कर हीराभाई(-) कर्म का सिद्धांत भोजक प्रकाशन. अहमदाबाद.
6. शास्त्री और दवे (1965) श्रीमद्भगवद गीता अखिल हिंदू प्रकाशन.अहमदाबाद.
7. जोशी वासुदेवशंकर महाशंकर (1959)। ईश ने केन उपनिषदसस्ता साहित्य प्रचार कार्यालय. अहमदाबाद.
8. तिलक बाल गंगाधर(2018) गीतरहस्य। भाग 1-2। आर बी तिलक।

लेखक : डॉ जयश्री कांतिलाल दवे
एसोसिएट प्रोफेसर
एम बी पटेल कॉलेज ऑफ एजुकेशन
सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, गुजरात
सहलेखक : डॉ समीर भूपेंद्रकुमार वाघरोडीया
असिस्टेंट प्रोफेसर, एम बी पटेल कॉलेज ऑफ एजुकेशन
सरदार पटेल विश्वविद्यालय

कविता

इंतजार

प्रोफ हिल्डा जोसफ़

हैमा मेरी हमजोली आज तू जिन्दा स्मृति साया में
भीनी भीनी आ रही पवन सी, सपनों की मृदु साया में
बरस पचास परिचय के, अब सोती स्मृतियों की शय्या में
भद्र कुल नंदना बहना, बन गई तू परमेश्वर की प्यारी।

हेम द्युति हो खड़ी हुई तू मेरे दिल के आंगन में
बिछुड़न का जख्म लगाया, यादों का लघु चषक खोल
स्नेह-सांत्वना की किरण बन खड़ी सुना सुनाये
किस्से बहुतेरे, एक नीरव निर्मल दोस्ती के।

पालघाट विक्टोरिया, स्टाफ रूम महाविद्यालय का
पछवीं हवा खायी छात्रवृत्तांत छेडे, बाँटीं खबरें जन जन की
दोस्ताने का आनंद चखा, बिताए दिन संग संग
यादें उजली हैं आज, ओ बहना, राष्ट्रवाणी नंदना।

आओ सखी, फिर इक बार,, इस क्षितिज पार
ललक रहा है प्रिय जन का मन, दर्शन पाने फिर से
जिन्होंने था लगाया मति से, आठों पहर छाती से
जिस गेह की रही रोशनी, अर्द्धशती के दौरान।

फिर आ जाओ इक बार, इंतजार है सबका,
इंतजार है तेरे प्रिय कांत शशिधर का,
तव वात्सल्य दुग्ध से पली दुहिताओं का
सपनों, खुशियों की तेरी, इस पार की दुनियाँ का

आओ बहना! फिर इक बार... इस क्षितिज पार।

(स्वः डॉ जे हैमवती अम्मा के स्मरणार्थ विरचित 'केरल के दिवंगत हिंदी सेवी' स्मृति ग्रंथ का अवतरण गीत।)

किसान समस्याएँ : फ़ाँस उपन्यास के विशेष संदर्भ में

डॉ धन्या बी

मूल आलेख

' जय जवान जय किसान '

भारत के पूर्व प्रधान मंत्री पं . लालबहादुर शास्त्री जी ने सैनिकों को , भारत की रक्षा के लिए उत्साहित करने के लिए 'जय जवान जय किसान' का नारा दिया और साथ ही किसानों को आयात पर निर्भरता कम करने हेतु खाद्यान्न -उत्पादन बढ़ाने में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित किया। यह बहुत लोकप्रिय नारा बन गया।

इस ऐतिहासिक नारे का महत्व यह है कि देश को, किसानों और जवानों के योगदान को नहीं भुलाना चाहिए। एक मेहनत कर अन्न उपजाता है और देश का भूख मिटाता है, दूसरा दिन-रात दुर्गम सीमाओं पर मुश्तैदी से तैनात रह कर देश की हिफाजत करता है। हमें अपने घरों में सुविधा-पूर्वक रहते हुए, उनके परिश्रम, त्याग, बलिदान को भूलना नहीं चाहिए बल्कि उनका नमन करना चाहिए। यह सब आज पुराना नारा बन गया है। उपर्युक्तऐतिहासिक नारे में किसानों को जो प्राधान्य दिया था अब भारतीय समाज में उनकी स्थिति बहुत शोचनीय है।

'फाँस' उपन्यास के माध्यम से संजीव जी ने किसानों के दयनीय हालत का मार्मिक चित्रण किया है। धर्माचारियों का पाखंड और अन्तर्राष्ट्रीय कंपनियों के छल, कपडों से पीडित भारत के छटपटाते किसान की व्यथापूर्ण चित्रण इसमें है। अकाल और अतिवृष्टि में आवश्यक कपडे न होकर सिर्फ एक मात्र साडी को तरसती शकुन जैसी औरतें हैं तो दूसरी ओर मालामाल होती बैंके हैं , पंडे - पुजारी हैं। कंपनियों के मालिकें है।

बीज शब्द : कर्ज, साहूकार, शोषण, कर्ज, त्रष्टा, विस्थापन, कारखाने पंडे पुजारी।

आत्महत्या की समस्या : गरीबी और बेकारी से जूझते जूझते किसान अपनी जिंदगी हार माने बैठे हैं । किसान मरते दम तक खेती करता रहता है , फिर भी उनके साथ अन्याय होता है। सेठ , साहूकारों और बैंकों से कर्ज लेकर कृषि चलाता है पर उससे फसलें साहूकार छीन लेते हैं। इसी कारण किसानों का जीवन अत्यंत शोचनीय बन जाते हैं यथा - "आज क्या कर क्या मंदिर क्या मस्जिद क्या साहूकार की दुकान , सर्वत्र उसी की चर्चा है , कौन था , क्यों फांसी लगायी ...? अरे आदमी था भाई शेतकारी।"[1]

किसानों की आत्महत्या निरंतर होने पर भी उसपर किसी का भी परवाह नहीं जाता है। जब वह मर जाता है बातें करते हैं कि कैसे मरा? क्यों मरा? इसके बारे में कोई चर्चा या जाँच नहीं होता । सचाई यह है कि किसान लोग अपनी ज़िंदगी खेतों के साथ बिताता है , खेती ही उनका प्राण है। लेकिन सत्ताधारियों द्वारा किसानों की ज़मीन छीनकर उसमें नये कारखाने और योजनाएँ बनाते रहते हैं। किसानों का जीवन संकट में पड़ता है और अंत में वे आत्महत्या करने के लिए विवश बन जाते हैं।

उपन्यास में आद्यंत किसानों की आत्महत्या का मार्मिक चित्रण देख सकते हैं। किसानों को धोखा देकर सत्ताधिकारियों ने उनके जमीन अपने हाथ में लेते हैं और वही किसानों उसी जमीन से काम करवाकर शोषण करते हैं। विदर्भ किसानो पर होने वाले इन छल कपटों के द्वारा उपन्यासकार ने पूरे देश में होनेवाले किसानों की दयनीय स्थिति की ओर इशारा किया है।

अंधविश्वास की समस्या : गाँव में रहनेवाले सदाशिव कुलकर्णी , नाग जोशी , निरंजन देवगिरी आदि ढ्रोंगी लोग मिलकर बनगाव के सभी गाँववालों को अंध विश्वास की ज़जीरों से बांधकर सभी लोगों को अपने काबू में लाते हैं । ये सदानंद जैसे पुजारी ऐसी-ऐसी बातें करके किसान लोगों को इस प्रकार के जाल में फंसाते हैं कि किसान उनके हाथ के कठपुतली बन जाते हैं और उनका सारी बातें वे मानते

हैं। तांत्रिक बनकर बैठे ये लोग किसानों की भूमि हटपने की योजनाएँ बनाते हैं और सदानंद फूल गाँव में जाकर धोखे देने की कोशिश करता है। वह सभी को कहता है कि - "बुरी आत्मा की साया है, ऐसे ज्योतिषी ने बताया। जब तक दूर नहीं होता गाँववाले वहीं रहेंगे गाँव बदर? निरंजन देवगिरी कोई अनुष्ठान करेंगे, साय हटेगा, फिर अपने - अपने गाँव लौटेंगे।"[2]

शिक्षा की समस्या : किसान लोग खेती को ही अधिक महत्व देते हैं क्योंकि जिससे वे अपना जीवन यापन करते रहते हैं। शिक्षा को वे अधिक महत्व न देते हैं। उनकी चिंता यह है कि बच्चों को शिक्षा देने से कोई लाभ न होगा । अपनी संकुचित मानसिका से वे अपने बच्चों का आगे की जिंदगी अंधकार में पलट देते हैं । बच्चों को ली मजदूरी करनी पड़ती है और इसी क्रमानुसार पूरे जीवन तक चलता है। प्रस्तुत उपन्यास में सिंधुताई अपनी होनहार लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखना चाहती है। इसीकारण मोहनदादा और सिंधुताई के बीच संघर्ष होता है। गाँववालों को इसपर जलन हैं और लड़कियों के बारे में गलत बातें फैलाते हैं । सिंधुताई के मन में भी शंका होती है और वह अपनी बेटियों को खेतों में काम करवाना चाहती है। कहती है कि - "मैं छुडवा देती पढ़ाई । एक दम से । जो पढ़ाई खेती से घृणा करना सिखाये , स्वार्थी बनाये , वैसी पढ़ाई को चूल्हे में न डालूँ।"[3]

अन्याय एवं शोषण की समस्या : किसानों पर पडे होने वाले घोर अन्याय के बारे में भी लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। सरकार, नेता, साहूवाले सभी किसानों का शोषण करते हैं। किसान लोग कभी कभी अन्याय और शोषण के खिलाफ लडते हैं, शिकायत लेकर बडे बडे दफ तरों में जाते हैं तो वहाँ कोई उनका सुनता नहीं है । सभी उन्हें बाहर धकेल दिया जाता है। फाँस उपन्यास में सत्तर वर्ष का दादाजी जो दलित भी है इनके साथ भी अन्याय होता है। दादाजी अपने ऊपर हो गये अन्याय के बारे में इस प्रकार बताते हैं - "पूरे मध्य भारत में इसी धान की खेती होती है - एच .एम . टी। दादाजी के धान की खेती? लेकिन विश्व विद्यालय ने कहा कि ना , ये तो हमारा धान है वह खुद इसे दुगुने दाम पर बेचने लगा, नाम बदलकर।"[4]

इसके साथ विस्थापन की समस्या, ऋण की समस्या, राजनैतिक समस्या , जाति भेद की समस्या आदि किसानों के अनेक समस्याओं की अभिव्यक्ति उपन्यास में हुई हैं।

निष्कर्ष : निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि फाँसउपन्यास में किसानों की आत्महत्या , अंधविश्वास , छुआछूत, कर्ज, राजनैतिक -आर्थिक, शिक्षा, विस्थापन, अन्याय, शोषण आदि अनेक समस्याओं का मार्मिक चित्रांकन मिलते हैं। इन समस्याओं का कारण उनकी अज्ञता ही है। इन घोर शोषण से उन की मुक्तिऔर आत्महत्या या प्राणत्याग से उन्हें बचाने के लिए उन्हें आत्मविश्वास बढ़ाना ही चाहिए। इसके लिए उन्हें शिक्षित बनाना अनिवार्य है। यह भारत की हर एक नागरिक का कर्तव्य भी है। क्यों कि किसान ही हमारे अन्नदाता है। इस बात को मत भूलना। 'जय जवान जय किसान।'

आधार ग्रंथ

1. संजीव, फाँस, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली - 2015

सहायक ग्रंथ

1. डॉ.संजीव की कहानियाँ शिल्प एवं शैलिगत अध्ययन, डॉ.स्नेहा पाटील, ए.बी.एस पब्लिकेशन वारणसी, 2013
2. संजीव जनधर्मी कथा शिल्पी, दिव्या डिस्ट्रीब्यूशन, कानपुर, 2011
3. हंस पत्रिका, राकेश बिहारी
4. त्रैमासिक ई पत्रिका, 'किसान जीवन की करु ण गाथा', डॉ वंदना तिवारी 2017
5. गोदान, प्रेमचंद

संदर्भग्रंथ सूची

1. संजीव - फाँस - पृ 9
2. वही पृष्ठ - 20
3. वही पृष्ठ -196

सहायक आचार्या
सरकारी कॉलेज आट्टिंगल

यात्राविवरण

मानस कैलास

अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर **मूल : मंजु वेल्लायणि** **अनुवाद : डॉ.रंजीत रविशैलम**

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

शिवजी के सामने काले तन के साथ भयानक लगती आँखें से जो खडी है वह है काली। ऊपर की ओर महाकाल स्वरूपिणी तारा। दाएँ तरफ मस्तक हीन छिन्नमस्त। बाई ओर भुवनेश्वरी। पीछे की ओर बगलास्या। आग्नेय कोन में विधवारूप में धूमवती। दक्षिण पश्चिम में त्रिपुरसुंदरी। वायु दिशा में मातंगी। ईशान दिशा में षोडशी।

संदेह होने लगता है कि चाँदनी ज़्यादा शोभायमान है कि कैलास के चहुँ ओर की क्षीरधारा के समान पड़ी हिमराशि। चार पाँववाले वृषभवर ने भूमि के साथ मिलकर नंदी होकर कैलास की वंदना की। ऐसा लगता है कि चार दिशाओं की ओर दौड़ने हेतु उत्साहित मन भी उसी तरह नंदीबिंब होकर कैलास को देखते हुए पड़ सकें। कैलास के सामने सब कुछ इच्छा करते यूँ बस खड़ा हो सकता है। विश्व में मनुष्य स्पर्श रहित एक ही स्थान कैलास है।

माना जाता है कि सत्य एवं धर्म में मुग्ध रहने पर भी युधिष्ठिर से कैलास दर्शन संभव नहीं हो पाया था। कुरुक्षेत्र युद्ध के दौरान मुँह से एक झूठ निकल गया था। युद्ध जीतने के लिए द्रोणाचार्य के आगे ऊँचे स्वर में अश्वत्थामा हतः कहा और 'कुंजरा' शब्द धीरे से। इस तरह छल करना ही कारण निकला। मिट्टी गूँथकर बनाया गया अश्वत्थामा नामक हाथी को ही गला काटकर मारा था। वर शक्ति प्राप्त एवं अस्त्र विद्या निपुण द्रोण को मानसिक रूप से कमज़ोर करने पर ही युद्ध में उन्हें पराजित कर पाएँगे - यह तथ्य समझकर ही श्रीकृष्ण धर्मपुत्र से अश्वत्थामा का गला कटकर मरने का संदेश दिलाता है। इसी एक कारण से कैलासदर्शन उनसे दूभर हो गए।

जीवन में स्थिरता के लिए, जीतने के लिए कितने ही झूठ बोले गए है। वचन बदले गए हैं। वचन से मुकर गए है। फिर भी कैलास दर्शन साध्य हो गए। मानसरोवर में स्नान कर पाए। किन-किन को शुक्रिया अदा करूँ। किन किन के चरण कमलों का नमन करूँ?

अनेक पुराण ग्रंथों में कहा गया है कि प्रपंच का एकदम मध्य कैलास है। बुद्‌ध धर्मग्रंथों से प्राप्त सूचना भी उसी तरह है। भूमि सी ओखली की 'पकड' है कैलास। चारों पक्ष में स्फटिक, माणिक्य, सोना, इंद्रनील आदि जड़े गए हैं। इन पक्षों की भद्रस्थिति हेतु बुद्‌ध के पदचिह्न इन पर रख गए हैं। ये ऊपर न उठने हेतु सूत्र से बाँधे गए हैं। पर्वत श्रृंग में खरोटिमाला पहनकर व व्याघ्रचर्म पहने रहनेवाले देंचोक देव और साथ में पाँच पंक्तियों में 900 उपदेवताएँ तथा नज़दीक हिम से आच्छादित छोटे पर्वत पर वज्र चराति (शक्ति देवी) भी स्थित है - ऐसा माना जाता है।

विष्णु पुराण के अनुसार कैलास के चार चेहरे चार भावों के द्‌योतक हैं। पूर्व में स्फटिक रूप, पश्चिम में माणिक्य वर्ण, दक्षिण में इंद्रनील और उत्तर में स्वर्णवर्ण।

अब स्वर्णवर्ण नहीं, चाँदी गलाकर डालने जैसा है कैलास। कैलास के विभिन्न नाम होते हैं। मेरु, सुमेरु, सुषुम्न, रसानु, कर्णिकाचल, अमराद्रि, ज्ञानपर्वत, रजताद्रि, तुषारगिरि आदि श्रृंखला की कड़ियों जैसा लंबा है। पुराणों में कैलास दूर दूर तक नीचे मुग्ध पड़ा है। पुराण प्रसिद्‌ध है कि कैलास के दक्षिण पूर्व हेम श्रृंग नामक पर्वत है। उसकी तराई में लोहित तीर्थ है। उससे लौहित्य नामक नदी का उद्‌भव होता है। उत्तर पश्चिम में शिवजी के बैल की जन्मस्थली ककद्‌मान नामक औषध श्रृंग। 'त्रैक्कुटम' नामक अंजन बनाते त्रिकुंभ पर्वत के सामने सारे धातु मिलकर तैयार हुए वैद्‌युत नामक पर्वत। उसकी तराई में

मानस नामक दिव्यसरोवर है। सरयु (शतद्रु) इससे उत्भूत होती है। कैलास के पश्चिम में स्वर्णधातु मण्डित अरुणगिरि नामक औषधगिरि स्थित है। स्वर्ण पत्थरों से भरे स्वर्ण वर्ण में शोभायमान श्रीमान नामक शृंग ही शिवजी को सबसे पसंद है।

चौदहवें दिन वापस आकर लामा ने कहा : "आज रात को समूचे क्षेत्र में तुम्हारे सिद्ध जादू-टोने के चिह्न देख सकते हैं। शाम को ही संप्रदाय रक्षक विश्वस्त देवता द्वारा माँगी गई वस्तुएँ प्रस्तुत की'। अर्थात् पैंतीस सिर एवं रक्तसिंचित हृदय। चरम आह्लाद में मुग्ध दावत का रुचिर प्राप्त करना प्रारंभ किया पैंतीस लोगों को ही मृत्यु के मुँह में फेंक दिया था।

माँ की मनःशांति हेतु गदाई जादू टोना कर, आँधी की सृष्टि कर तथा हिम वर्षा कर भारी पार का संचय करते मिलरेपा बाद में पछता रहे हैं। स्वयं निर्मित हिमपात में पंछियों एवं मृगों का मरना देखकर उनसे रहा नहीं गया। उन लाशों को लामा के चरणों पर रखकर भभक भभककर रोया। बिलखकर कहा कि पाप पर पाप ही कर पाया है। दुर्लभ मानवजन्म प्राप्त करने के बाद भी बिना सच जाने मर खपने वालों के बारे में सोच करुणा आ गई।

बहुत सालों बाद घर-वापस आने पर मिलरेपा ने वहाँ तहस-नहस हुआ घर और माँ की हड्डियाँ देखे। जीवन की निरर्थक स्थिति ज्ञात आपने अपना बचा हुआ जीवन सत्य-सर्मादि के लिए रखा। जैसे शेर के पदचिह्नों का अनुगमन करता खरगोश किसी गड्ढे में गिरकर मर जाता है वैसे ही स्थिति पहचानकर मिलरेपा अपने संन्यास जीवन का सार प्रेयसी से कहते हैं : "अपनी स्थिति एवं उन्नति-सुख के लिए एक-दो पुस्तकें याद करके विशुद्धि का वेश धारण कर चलनेवाले भी होते हैं। स्वयं की विजय एवं दूसरों की पराजय में मद करते वे धर्म के नाम पर संपत्ति अर्जित करते हैं। उनका बड़ा नाम व पतिवस्त्र लोगों को उल्लू बनाने के लिए होते हैं। उनके खिलाफ मैं हमेशा रहा हूँ। कितने ही शताब्दियों पहले की मिलरेपा की यह उक्ति पंचसितारे आश्रमों देवालय समुच्चयों को देखकर अर्थयुक्त स्मयन करती है। (क्रमशः)

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. 'मुझे जीना है' किस प्रसिद्ध कहानीकार की प्रथम कहानी है?
2. 'कर्ण की आत्मकथा' किसका उपन्यास है?
3. 'हिंदी भाषा का पाणिनी' किसे कहा जाता है?
4. 'छलना सिद्धांत' का प्रवर्तक किसे माना जाता है?
5. श्वानों का मिलता दूध-भात/बच्चे भूखे अकुलाते हैं-किसकी पंक्तियाँ हैं?
6. 'उपनिवेश में स्त्री' किसका आलोचनात्मक ग्रंथ है?
7. 'एलबम' किसका संस्मरण है?
8. हिंदी का भवभूति किसे कहा जाता है?
9. शानी का वास्तविक नाम क्या था?
10. 'मार्क्सवाद सिखाता है कि हर चीज़ पर डाउट करो'–किसका कथन है?
11. 'करुणालय' किस विधा की रचना है?
12. काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है - किसका कथन है?
13. 'अमिय हलाहल मद भरे, सेत स्याम रतनार' किसकी प्रसिद्ध पंक्ति है ?
14. 'अणुभाष्य' का रचयिता कौन है?
15. 'रामाज्ञाप्रश्न' किस प्रकार की रचना है?
16. कविराज विश्वनाथ ने वाक्य के कितने अनिवार्य तत्त्व माने हैं?
17. 'रीति सुभाषा कवित्त की बरतन बुध अनुसार' - किसने कहा?
18. 'आदिम एकांत' का रचनाकार कौन है?
19. 'अस्वीकृत कविता' की स्थापना किसने की?
20. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' किसका प्रसिद्ध उपन्यास है?

उत्तर: पृष्ठ 46 में

आत्मकथा

देवयानम्

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

पंद्रहवाँ देवपद - बंधुर तिरुवनंतपुरम

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

आट्टुकाल (तिरुवनंतपुरम) के देवी मंदिर के शासकों ने 1999 में ही 'अंबाप्रसादं' नामक मासिक का प्रकाशन शुरू किया था। उसके संपादक के रूप में उन्होंने मुझे चुन लिया था और मैंने वह दायित्व बड़े संतोष के साथ सफलतापूर्वक निभाया।

प्रोफसर वी आनंदकुट्टन नायर और उनके दोस्त श्री पुरुषोत्तमन नंपियातिरि, जो यूनिवेर्सिटी कॉलेज के संस्कृत विभाग के अध्यापक थे, दोनों की प्रेरणा से पेरूरक्कटा नामक स्थान पर मैंने पचास सेंट की ज़मीन खरीद ली थी। (सेंट - भूमि की माप 100 सेंट माने एक एकड़) पंद्रह एकड़ से अधिक विस्तृत अहाते का एक अंश मात्र था वह। मैंने वहाँ एक कुआँ खुदवा लिया था और दो कमरेवाला एक छोटा सा मकान भी बनवाया था। बड़े संतोष की बात यह हुई कि अपना यह घर देखने के लिए माँ आई थी। श्रेष्ठ संन्यासी श्री विमलानंद स्वामी और श्री गोलोकानंद स्वामी दोनों मेरे इस आश्रम-तुल्य घर देखने आए थे। परंतु बाद में यहाँ रह कर विश्वविद्यालय जाना कठिन महसूस हुआ तो मैं ने यह घर किसी को किराये पर दिया और स्वयं नगर के हृदय में स्थित विख्यात 'ट्रिवान्ड्रम होटल' में रहने लगा।

सोलहवाँ देवपद - सौहृदव्याहृति

केरल की राजधानी स्थित 'ट्रिवान्ड्रम ब्राह्मिन्स होटेल' सिर्फ एक भोजनशाला नहीं थी; बल्कि वह कोई सांस्कृतिक केंद्र जैसा था। उसका मालिक था श्री के सी पिल्लै। उसके प्रबंधकर्ता श्री के आर वी पिषारडी, श्री राजन आदि सभी लोग मुझे अपने परिवार का अंग जैसा मानते थे; मुझसे कोई अलगाव नहीं दिखाते थे। केरल के राजनैतिक लोग, साहित्यकार, कलाकार आदि कई लोग वहाँ आकर रहते थे। वे सब मेरे परिचित हो गए थे; क्योंकि कई वर्ष मैं वहाँ रहता था। उनमें से सबसे प्रमुख व्यक्ति थे श्री सी अच्युत मेनोन जो सबसे आदरणीय आदर्शनिष्ठ साम्यवादी नेता थे। बाद में वे केरल के मुख्यमंत्री बने थे। होटेल में वे मेरे पासवाले कमरे में रहते थे और हम दोनों में बड़ी दोस्ती हो गई थी। कोई अच्छी-खासी पुस्तक मैंने पढ़ी तो वह उन्हें पढ़ने के लिए मैं देता था और उसी प्रकार वे भी मुझे पुस्तक देते थे। एक बार ऐसा हुआ था कि विवेकानंद इंस्टिट्यूट हॉल में मार्गी के किसी कार्यक्रम में महाराजा श्री कार्तिका तिरुनाळ् के बारे में मेरा भाषण सुनकर उन्होंने उसकी बड़ी प्रशंसा की थी। वे तो उस सभा के उद्घाटक थे। कुछ साल बाद केरल कलामण्डलम में भी किसी वार्षिक समारोह में भाग लेते हुए उन्होंने मेरे भाषण की प्रशंसा की थी। श्री सी अच्युत मेनोन के बारे में सब लोग जानते हैं कि वे एक आदर्शनिष्ठ सरल राजनैतिक थे। रुग्णावस्था में जब मैं उन्हें देखने गया था तब उन्होंने मुझसे कहा था "पेंशन मिलता है; इसलिए दवाई खरीदता हूँ।" वे अन्य राजनैतिक नेताओं से बिलकुल भिन्न थे।

अपने अतिथियों के स्वागत-सत्कार करने में ट्रिवानड्रम ब्राह्मिन्स होटेल के कर्मचारियों की निपुणता तो देखते ही बनती है। इसी कारण से समाज के बहुत

से उन्नत लोग जब राजधानी आते थे तब इस होटेल में रहते थे। केरल की राजधानी होने से हर जगह से लोगों का तिरुवनंतपुरम आना स्वाभाविक है। इस प्रकार साहित्यकार, कलाकार, राजनैतिक नेता आदि बहुत से लोग इस नगर में आते थे और उनमें अधिकांश ट्रिवान्ड्रम होटल में दो-चार दिन को रहते थे। इसका मेल-मिलाप, इनकी गहन चर्चाएँ सब मिलकर इस होटल को किसी सांस्कृतिक केंद्र का उदात्त भाव प्रदान करता था। ऐसे महान व्यक्तित्वों की एक बड़ी लंबी सूची थी जिनमें से कुछ लोगों का नाम यहाँ बताना चाहता हूँ। श्री एन के शेषन (जो पहले मंत्री थे), एम एल ए श्री नारायण नंपियार, जैसे राजनैतिक नेता, महाकवि श्री जी शंकरापिल्लै, श्री पवनन आदि मलयालम साहित्य क्षेत्र के महत्वपूर्ण अनेक व्यक्तित्व, डॉ मुरियिल कृष्णन नंपीशन आदि का नाम यहाँ मैं विशेष रूप से उल्लेखित करना चाहता हूँ। स्वयं मैं तो पंद्रह साल तक इस होटेल में रहता था और मेरा भाई डॉ वी पी शर्मा भी अपनी पढ़ाई के लिए कुछ समय अपने साथ रहता था। इस होटेल का भोजन मेरे लिए हित कर और सुविधाजनक था। उन दिनों जिन लोगों के साथ मेरी मित्रता स्थापित हो गई थी उनकी याद आती रहती हैं जिनमें अधिकांश अब न रहे। इस होटेल में रहकर अपने को बहुतों का प्यार मिला था। महाकवि श्री वेण्णिक्कुलम गोपाल कुरुप्पु के साथ मेरी मित्रता थी जिन्होंने अपने निबंधों का समाहार 'उन्मीलनम' नामक पुस्तक की भूमिका लिखी थी। महात्मा गाँधी कॉलेज के प्रिंसिपल प्रोफसर एम पी मन्मथन के साथ भी मेरी बहुत बड़ी दोस्ती थी। अपना प्रिय मित्र प्रो डी अप्पुक्कुट्टन नायर ने प्रसिद्ध नर्तकी श्रीमती रुग्मिणी देवी के साथ मेरा परिचय कराया था। उन्होंने मेरी पुस्तक 'बालराम-सरस्वति' के लिए एक सार्थक संदेश भेज दिया था।

हमारी कला-संस्था 'मार्गी' के नेतृत्व में केरल की नहीं; बल्कि पूरे देश की विविध कलाएँ प्रतिष्ठा प्राप्त कलाकारों के द्वारा राजधानी के रंगमंचों पर प्रस्तुत की जाती थी। नगर के प्रमुख रंगमंचों को इसके लिए सुसज्जित किया गया था जैसे तेवारत्तु कोयिक्कल कोट्टारम, वी जे टाऊन हॉल, कार्तिका तिरुनाल थियेटर, विवेकानंद शताब्दी स्मारक इन्स्टिट्यूट, श्री चित्तिरा तिरुनाल लाइब्रेरी हॉल आदि। प्रत्येक कला के बारे में पंडितों की चर्चाएँ होती थीं और उनके प्रबंधों का समाहार स्मारिका ग्रंथ के रूप में प्रकाशित किया जाता था। आदरणीय बहुत से कलाकार और मित्र इस कठिन काम में मेरा सहयोग देते थे।

1985 में श्री एऱक्करा रामन नंपूतिरि के बारे में शुकपुरं (मलप्पुऱम जिला) में मैंने एक भाषण दिया था। महाकवि श्री अक्कित्तं की प्रेरणा से ही मैं वहाँ गया था। अपने भाषण का विषय था केरल के वेदों की परंपरा। बाद में 'आसज्जनं'; नामक पुस्तक में अपना यह भाषण प्रकाशित किया गया था जिसकी भूमिका डॉ श्रीकृष्ण शर्मा ने लिखी थी। इसी प्रकार अपने प्रिय शिष्य डॉ सामुवल नेल्लिमुकल की प्रार्थना स्वीकार कर सी एम एस कॉलेज (कोट्टयम) में मैंने श्री बेंचमिन बेइली के बारे में भाषण दिया था।अपने दूसरे शिष्य श्री सेबास्टिन का निमंत्रण स्वीकार कर चेंगनाश्शेरी के सेंट बरकमेंस कॉलेज में श्री ऐ सी चाक्को के बारे में भी मैंने वक्तृता दी थी। अपने गुरु पंडितरत्नं श्री के पी नारायण पिषारडी के गुरु थे श्री आट्टूर कृष्ण पिषारडी। उन्हीं के बारे में किसी सभा में भाषण देने का सौभाग्य मुझे मिला था। उनकी 'संगीत चंद्रिका' नामक पुस्तक का प्राक्कथन मैने लिखा था। कोटुंगल्लूर श्री कुंजिक्कुट्टन तंपुरान ने 'महाभारत का मलयालम में अनुवाद किया था जिसकी कोई तुलना नहीं है। जब वह दुबारा प्रकाशित हो गया था तब उसकी संपादक-समिति में संशोधन का दायित्व मैंने निबाहा था।

(क्रमशः)

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी **अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार**

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

बेटी की प्रथम रात्रि होने से ही हो सकता है बड़ी माँ कुछ देरी से जाग उठी थी। नामजपन के बाद आँगन पर उतरकर आकाश की ओर देखकर हाथ जोड़कर घडी होते समय सामने नया दामाद। “बेटा, क्यों इतनी देरी से उठ गया?” बडी माँ ने पूछा। क्रुद्ध होकर दाया पैर ताल में पटक कर नववर रूपी इरवंगरा उण्णित्तान ने कहा - “मैं जाता हूँ।” तभी दामाद के हाथ की पेटी बड़ी माँ को दिखाई दी।

“क्यों उण्णित्तान, क्या हुआ?” “बेटी से ही पूछो, तंपी लोगों को ही नहीं उण्णित्तान लोगों को भी गर्व है।” बडी माँ स्तब्ध बनी रही थी कि वह बहुत जल्दी दूर चला गया। बड़ी माँ उन्माद में दौड़कर कमरे में जाकर देखने पर बेटी चैन से सो रही थी। क्रुद्ध होकर बड़ी माँ ने बेटी को जगा दिया। “अरे क्या है; यहाँ हुआ क्या?”

जागकर आँखें मलती हुई बेटी ने कहा - “मैंने कहा था न कि यह शादी नहीं चाहिए। माँ ने मुझे लात मारी। क्या मैं कुत्ता हूँ, तेरी लात सहने के लिए? अगर मुझे नहीं चाहिए तो नहीं चाहिए। बेटी को पीटने के लिए आगे आई माँ को रोकती हुई भार्गवी तंकच्ची ने कहा - आगे मुझे छूना तक नहीं? अगर छूएगी तो पता चल ही जाएगी। “मुझे इस पुलित्तिट्टा के घर से निकाल देने की कोशिश मत करें। बँटवारे के भाग के अनुसार माँ के लिए जो भाग है वही मेरेलिए भी है...”

बड़ी माँ टूट गई। भाइयों एवं छोटी बहनों के मुख देखने के भी धैर्य के बिना वे थक गईं। चाचा पद्मनाभन तंपी ने स्नेहपूर्वक भानजी से बात की - “हमारा परिवार राज शासन का परिवार है। भार्गवी.... तू यह मत भूलना....” तब ज़रा भी भय के बिना चाचाजी से उसने कहा - “जो विवाह मुझे पसंद नहीं था वह कराने के लिए तुम सफल होंगे, पर वह, मेरे शरीर छूएगा ही नहीं, इसका निर्णय मैं ही करती हूँ... तब तो तूने अपने पति का अपमान किया। क्या तूने उन्हें छूने तक नहीं दिया?” “उसे मुझे छूने की नौबत नहीं आयी। उससे पहले मैंने बात बता दी” “क्या बतायी?” मैं तुम्हें पसंद नहीं करती। मेरे शरीर पर छूना मत, ऐसा कहा दिया।

“फिर?” वह उण्णित्तान निरीह व्यक्ति है। वह यह सुनकर दूर हटकर कोने में बैठ गया, “तब तूने क्या किया?” “मैं पलंग पर लेटकर सो गई। चाचाजी भी पराजित हुए। भार्गवी तंकच्ची को कोई भी पराजित न कर सका। शादी के बाद भी कन्यका बनकर भार्गवी तंकच्ची पुलित्तिट्टा के कोयिक्कल नामक घर में रही।” बेटी की शत्रु बनी माँ के साथ।

मैं जिस भार्गवी तंकच्ची को पुलित्तिट्टा उप्पाप्पा कहकर पुकारता था, इस तरह गर्व का ध्वज पकडती हुई सिर ऊँचा करके खड़े रहे तंपी लोगों के परिवार की इन व्याकरणिक गलतियों से भरा अध्याय बन गया था।

इस वेदना के साथ आर्थिक कठिनाई भी होने पर पद्मनाभन तंपी नामक अतिकाय व्यक्ति बिना लक्ष्य पर पहुँचे....। ठीक इसी समय में ही मेडयिल घर के किराए की ..... के लिए बहन के पति रूपी वकील दबाव डालने लगा। अगर रुपए नहीं देते तो अदालत में जाना पडेगा। यहाँ तक वकील नीलकंठ पिल्ला ने कह डाला।

पोन्नम्मा तंकच्ची को प्रिय चाचाजी से स्नेह और आभार था। लेकिन पति का विरोध करने में असमर्थ शांत स्त्री थी मेरी मेडा की उप्पाप्पा। मेरी आत्मकथा में चेल्लम्मा तंकच्ची रूपी मेडा की उप्पाप्पा को एक बड़ा स्थान है।

चाचाजी के दंत अस्पताल में सहायक के रूप में एक लड़के को लगा दिया था। उस लड़के का नाम करुणाकरन था। विशाल मनवाले पद्मनाभन तंपी उस लडके से दाँत निकालने और दाँत भर देने के कार्यों को देखकर पढने के लिए कहा करते थे। रोगियों के आते समय डॉक्टर नहीं होंगे। डॉक्टर हैं तो भी रोगियों को देखते नहीं करते थे। 'तुम जाकर कल आ जाओ' ऐसा कहते थे।

प्रताप का अस्मन शुरू होने पर अनुचरों की संख्या कम हुई। वैवाहिक जीवन की शांति नष्ट होने लगी। बंधु और शत्रु के परखने में असमर्थ होकर चाचाजी दुखी हुए। सारे रिश्ते रूपए के जाल पडेगा, यह सत्य पद्मनाभन तंपी नामक त्यागशील जननेता ने समझ लिया। तभी करिमबालेत्तु घर में अविवाहित होकर निस्सहाय होकरअपनी माँ के साथ रहनेवाली छोटी बहन भवानी का मुख ने उनको दिन और रात सताना प्रारंभ किया। सब कुछ हासिल करने पर अपने को अकेला छोडनेवाले देशी लोगों को उन्होंने घृणा किया। अपनी ही बड़ी माँ का बेटा और परिवार का मुखिया विषवैद्य कुमारन तंपी का परिहास ने ही पद्मनाभन तंपी को सबसे अधिक सताया था। जन्म देनेवाली कुंजिकुट्टि तंकच्ची ने भी दोषी ठहराया। मेरी बच्ची के लिए एक पति को ढूँढ निकालने में तुझे आज तक सफलता नहीं मिली। उसके बँटवारे के भाग में भी तू ने हस्तक्षेप किया न?

भवानी का विवाह जितनी जल्दी हो जाए कर देने के लिए पद्मनाभन तंपी ने निश्चय किया। हरिप्पाट्टु को छोड़कर और किसी प्रदेश में जाने का भी उन्होंने निश्चय किया।

कल्कत्ता में पढ़ते समय तमिलनाडु के जिस व्यक्ति से परिचय हुआ, उस मित्र के साथ उन्होंने संबंध मिलाया। श्रीमूलम असेंब्ली में सदस्य रहते समय चाचाजी से मिलने के लिए मात्र वह मनुष्य तिरुवनंतपुरम आया था। वे एल एम पी (LMP) में विजयी अलोपथी डॉक्टर थे। तंपी अंबा समुद्र में आकर एक देन्तल क्लिनिक शुरू करो। तात्कालिक रूप से मेरे नर्सिंग होम से लगकर सीमित रीति में शुरू करें। तुमको बहुत रोगियों को मिलेंगे...."

चाचाजी और चाचीजी को यह सुझाव पसंद आये। गाँव छोडें तो भलाई होगी, ऐसी कठिनाई के समय में भी साथ रहनेवाले कुछ हरिप्पाट्टु के लोगों ने कहा। पर बहन जब अविवाहित रहती थी तब कैसे गाँव छोड़ देंगे? विवाह जीवन के बारे में बात करते समय माँ एक बात कहा करती थी।" (क्रमशः)

उत्तर

1. शिवमूर्ति
2. मनुशर्मा
3. कामता प्रसाद गुरु
4. जॉ बौद्रीआ
5. दिनकर
6. प्रभा खेतान
7. सत्यजीवन वर्मा भारतीय
8. पुष्यदंत
9. गुलशेर खाँ
10. डॉ रामविलास शर्मा
11. गीति-नाट्य
12. जयशंकर प्रसाद
13. रसलीन
14. वल्लभाचार्य
15. ज्योतिष ग्रंथ
16. तीन
17. चिंतामणि
18. जगदीश गुप्त
19. श्रीराम शुक्ल
20. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

समापन समारोह का उद्घाटन केरल सरकार के पूर्व गृहमंत्री श्री.रमेश चेन्नित्तला कर रहे हैं।

पुस्तकों के लोकार्पण के विभिन्न दृश्य

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-10-2025
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

OCTOBER 2025

Vol. No. 62, Issue No.07
Regn. No. KL/TV(S) 381/2025-2027
Price Rs. 40/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

'केरल ज्योति' पत्रिका के मुख्य संपादक प्रो.डी.तंकप्पन नायर के अकस्मात ब्रह्मलीन के अवसर पर हुई शोक सभा में मंत्री अधिवक्ता डॉ.बी.मधु श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हैं।

दिवंगत हिंदी सेवी के पार्थिव शरीर पर श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हुए सभा के अध्यापक, कर्मचारी एवं विद्यार्थी गण।

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित डॉ.एम.एस.विनयचन्द्रन व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Dr.M.S.Vinayachandran and Dr.Renjith Ravisailam